॥ श्री जयाचार्य्य कृत ॥

॥ गुलाबचन्द कृत ॥

॥ स्वामी श्री भीखणजी कृत ॥

॥ गुलाबचन्द कृत ॥

* श्री. *

॥ मङ्गला चरणम् ॥

॥ दोहा ॥

प्रणमूं श्रीअरिहन्त नित, द्वादश गुण संयुक्त ॥
दुष्ट कर्म शत्रू प्रते, हणिया बरवा मुक्ति ॥ १ ॥
कारज सिद्ध सकल करी, थये सिद्ध भगवन्त ॥
अष्ट गुणे युत ते नमूं, पाया सुक्ख अनन्त ॥ २ ॥
आचारज बन्दू सदा, गुण छत्तीस सु आर्य्य ॥
उपदेशक जिन धर्मनां, सारण वारण कार्य्य ॥ ३ ॥
श्रुत ज्ञान द्वादशांग को, पढ़ै पढ़ावे सार ॥
पंचवीस गुणधर सदा, उपाध्याय अणगार ॥ ४ ॥
फुन प्रणमूं सब साधुजन, साधै शिव-मग तेह ॥
सप्त वीस गुण शोभता, पञ्चाचार पालेह ॥ ५ ॥
सुमरूं श्रीभिक्षू गुरू, प्रबल बुद्धि भण्डार ॥
प्रगटे पंचम अरक में, कियो बहोत उपकार ॥ ६ ॥
दया धर्म प्रभुजी कह्यो, आगम मांहि विचार ॥
भिक्षू तास भलीपरें, उलखायो तन्तसार ॥ ७ ॥
तसु अष्टम पट शोभता, कालू गणी गुणगेह ॥
तन मनसे सेयां थकां, पाप विघ्न मेटेह ॥ ८ ॥
विनय मूल जिन धर्म है, तेहनां दोय प्रकार ॥
श्रमण पंच महाव्रय मयी, श्रावक द्वादश धार ॥ ९ ॥

जिन आज्ञा है बरत में, अव्रत आज्ञा बार ॥
न्याय दृष्टि करि देखिये, पक्षपात सब टार ॥ १० ॥
तीन गुप्ति पांचू सुमति, पंच महाव्रत मान ॥
पालें ते प्रभु पंथमें, अन्य अनेरा जान ॥ ११ ॥
संवरनें वलि निर्जरा, एहिज तेरो पंथ ॥
चालें तुज कहि चालमें, श्रावकनें निग्रन्थ ॥ १२ ॥
सरल भाव हृदयें धरी, सांभलिए जिन वान ॥
गुलाब कहै व्रत आदरो, भाख्यो श्रीवर्द्धमान ॥ १३ ॥

श्री

॥ श्री जैन धर्मो जयति ॥

॥ श्रीसुगुरुभ्यो नमः ॥

अथ श्रावक धर्म विचारः

श्रावक धर्म क्या है जिसको प्रायः सब ही सम्यग्दृष्टि जीव जाने हुए हैं। लेकिन बहुत से अज्ञानी जीव भ्रमवश मदान्ध होके श्रावक के खाने खिलाने आदि संसारी कर्तव्यको भी श्रावक धर्म समझे हुए हैं कहते हैं श्रावक धर्म अलग है और श्रमण धर्म अलग है परन्तु मिथ्यात्व मोहनीय की प्रबलोदय से यह नहीं जानते कि परस्पर खाना खिलाना तो संसारी व्यवहार इन्द्रिय पोषण है, वो "आस्रव है" यदि श्रावक धर्म अलग है तो संसारी कर्तव्य से या जिनाज्ञासे ऐसा विचारणा अवश्य ही चाहिये, संसारी कर्तव्यमें जिनाज्ञा कदापि नहीं है, जिस कार्य में जिनाज्ञा है वो ही कार्य निरवद्य और धार्मिक है

उसी कर्तव्यसे अशुभ कर्म निर्जरते हैं और पुन्य बन्ध होता है, जिस कार्यमें जिनाज्ञा नहीं है उस कार्य में एकान्त पाप कर्म का बन्ध है और किंचित् मात्र भी धर्म नहीं है, तो बुद्धिमान् जन सहजमें समझ सकते हैं कि श्रावक के खाने खिलाने में जिनाज्ञा नहीं है तो यह श्रावक धर्म नहीं है, अव्रत है। सम्यग्दर्शन पाके हिन्सा, झूठ, चोरी, मैथुन परिग्रहादि आस्रव द्वारोंमें जितनां २ प्रवर्तता है वो श्रावक धर्म नहीं है "अव्रतास्रव है" और अव्रतास्रव द्वारा पापं कर्मका बन्ध भगवाननें कहा है अव्रतको सेनें सेवानें भले जानने में पाप है।

श्रीतीर्थंङ्करों नें दोय प्रकारके धर्म प्ररूपे हैं श्रमण धर्म १ श्रमणोपाशक धर्म। श्रमण धर्म तो पञ्च महाव्रत रूप और श्रमणोपाशक धर्म द्वादश व्रत रूप है। साधूको सर्व प्रकारे सावद्य कर्म करनें करानें अनुमोदनें का मन वचन काय्यासे त्याग है इस से साधूका शरीर अधिकरण नहीं है उनके किसी प्रकारका पाप कर्म करनें करानें अनुमोदनेंका आगार नहो है तब हो सर्व व्रती संजती कहाते हैं।

श्रावक सर्व व्रती नहीं है "देशव्रती है" सावद्य के त्याग हैं वो देशव्रत संवर है, जीवा जीवादि नव तत्वों कों यथार्थ समझना शुद्धदेव शुद्धगुरु शुद्धधर्म की परीक्षा करके जिन वचनों की (आस्था) प्रतीति रखके श्रीजिन प्रणीत तत्वोंका शुद्ध श्रद्धान बिना चारित्र नहीं होता चारित्र के बिना मोक्ष नहीं होता।

अनादि कालसें जीव पाप कर्मोपार्जन करके चतुर्गति संसाररूप अटवीमें परिभ्रमण कर रहा है अपने स्वभाव को भूलके परभावमें लिप्त हो रहा है मोह वश अपणी पवित्र आत्माको भव सागरमें डुबो-रहा है इसका मुख्य कारण "मिथ्यात्व" ही है, मिथ्यात्व से ही जीव ज्ञानावरणीयादि अशुभ कर्माष्टक के पुंजके पुञ्ज संग्रह करके नरक निगोदादि दुःखोंके भोगी होते हैं।

अठारे प्रकार के पाप कर्मोंमें मिथ्यादर्शन सल्यही मुख्य है, इसलिये सद्गुरू का कहना है हे देवानुप्रिय जहांतक बनें जहां तक "सम्यग्दर्शन" पानेका उद्योग ही करना उचित है, मिथ्यामयी निद्रामें सोते हुए बहुत समय व्यतीत हुआ, क्या

अभी तक इस निद्रामें सोते ही रहोगे देखो इस निद्रानें तुम्हारा आत्मगुण दबाया है तुम कैसे हो और अब किस तरह हो रहे हो, यदि अब सुसंग पायकर भी नहीं जागोगे तो फिर कब जागोगे, यह मनुष्य जन्म आर्यक्षेत्र उत्तमकुल दीर्घायु पूर्णेन्द्री सद्गुरु संयोग पाना महा मुश्किल है।

सद्गुरु संयोग से ही सब बातें जानी जाती है सम्यग्दर्शन सूर्योदयसे हीं मिथ्यामयी महान्धकार दूर होता है, श्रीजिनराज देवनें ज्ञान १ दर्शन २ चारित्र ३ तप ४ ही मुक्ति मार्ग कहे है, इस लिये पूर्वोक्त चातुर्मार्गकी साधना करो, अपने आत्महित पथको छोड़कर अपने सरल और विनयी राह को त्यागकर जगत्पूज्य ऋषीमार्गको भूलकर, तुम किस मार्गको भटकते जारहे हो, यह तुम्हारा मार्ग नहीं है, कुमार्गको छोड़कर सुमार्ग में आना ही परमप्रिय और मोक्षदाई है, ज्ञानवृद्ध संजमी प्राचीन ऋषिगण जिस मार्ग चले है और कह गये हैं उसी मार्गपर चलनेसे आत्मशक्ति प्रगट होगी और अनन्त सुखोंके भोगी होंगे, अन्यथा आत्मशक्ति लुप्त होनेका ही

उपाय है, जरा ज्ञान नेत्र खोलके देखो संसार बढ़ने का मार्ग कैसा है।

* प्रवृत्ति *

संसारी कर्त्तव्योंकी प्रवृति मार्ग को छोड़कर निवृत्ति मार्ग का अवलम्बन करो प्रवृत्ति मार्ग से जन्म जरा मरणादि दुःखोंका समूह बढ़ता है यदि तुम सदा सर्वदा अचल अटल रहना चाहते हो तो अपने जिन प्रणीत निवृत्ति मार्ग को ग्रहण करो अजरामर होनेका एक यही उपाय है, प्रवृत्ति और निवृत्ति मार्ग क्या है पहले इसको समझो, प्रवृत्ति मार्ग है जिनाज्ञा बाहर संसारी कामों में प्रवर्त्तना, गृहस्थाश्रमी अज्ञानी जीव और हिन्सा धर्मी कुगुरुओं का कहना है, अर्थ बलसे बलवान् होनेकी चेष्टा करो, अर्थ हीन होके किसो विषय में भी सफलता नहीं प्राप्त कर सकोगे, वाणिज्य मे प्रवृत्त हो, अर्थ संग्रह के लिये गिरिश्रृङ्ग मरुभूमि समुद्रोलङ्घनादि घने जङ्गलों मे विना विचारे चले जाओ, चाहे जमीन खोद भूगर्भसे प्रवेश कर रत्न संग्रह करो, समुद्रके भीतर गोता लगाकर मोती निकाल ल्यावो, यही क्यो जिस तरह बनसकै जिस तरह अर्थ संग्रह करो,

रुपया बड़ी चीज है किसी प्रकार रुपया तुम्हारे पास होजाय फिर संसार में तुम्हारे लिये कोई चीज भी दुःप्राप्य नहीं रहेगी, इससे जिसतरह बनें उसी तरह धन धान्यादिक का संग्रह करो, और "निवृत्ति" मार्ग है इनसे [निवर्त्तना] छोड़ना, चतुर्दश-पूर्वधर गणधरोंने ज्यो वचन श्रीजिनेश्वर महाराजसे सुनके शास्त्र रचे हैं उन शास्त्रोंके वाक्य है [धम्मो मंगल मुक्किट्टं अहिंसा संजमो तवो] 'अहिंसा परमो धर्मः और उत्कृष्ट मङ्गलं ऋषिगण बारम्बार कह रहे हैं' अर्थ ही अनर्थका मूल है, यह बात सदैव ध्यानमें रखना यदि अमर होना चाहो तो निर्लोभ हो, धनकी लालसा छोड़ दो, वचन निर्वद्य और सत्य कहो, अदत्त ग्रहणको त्यागो, ब्रह्मचर्य्य धारो, संजमी हो, तपस्वी हो।

अब न्यायाश्रयी और तत्वज्ञ पुरुष विचार सकते हैं प्रवृत्ति और निवृत्ति में कितना फरक है, शुद्ध नीतिसे विचारकर देखो तो साफ साफ मालूम होता है प्रवृत्ति मार्गसे निवृत्ति मार्ग एकदम विरुद्ध है, संसारका रास्ता और धर्मका रास्ता अलग २ है, ज्ञान दर्शन चारित्रादि शिव मार्ग हैं, ज्यो जीव समदृष्टि होगा वह एकाएक कुकर्म करने से डरेगा यथाशक्ति

यम नियम अङ्गीकार् करेगा, पापके कामोंमें पाप, और धर्मके काममें धर्म समझना ही सम्यग्दर्शन है, जहां तक सम्यग्दर्शनका बल है, तहां तक नरक निगोद तिर्यंच मनुष्य गतिका आयु बंध नहीं होता, यदि होय तो देवायु हो, यही क्यों देव गतिमें से भी केवल वैमानिक देवायु ही बांध सकता है, कहिये कितना बड़ा महात्म्य सम्यक्तका है, सिर्फ यही नहीं सम्यग्दर्शन पानेसे बहुत से गुण उत्पन्न होते हैं, सम्यग्दर्शनी जीव चारित्र मोहनीय क्षयोपसमानुसार व्रत धारणकर देश व्रती या सर्व व्रती गुणस्थान प्राप्त करते हैं सम्यग्दर्शनीके संवर पदार्थ अकर्त्तापण जो जीवका खास गुण है वो प्रगट होता है।

मिथ्यात्वी जीव अनेक तरह के कष्ट सहन कर तप जप शील सन्तोषादि सुकार्य्य करता है लेकिन संवर पदार्थ की प्राप्ति उन्हे नहीं होती निर्जरा धर्मी ही है, सूत्रोंमें कहा है बाल अज्ञानीका मास मास क्षमणतप सम्यग्दृष्टि के व्रत पच्चक्खाण के फलके षोड़सांश नहीं आता, सोलवें ही क्या, हजारवें लाखवें करोड़ वें यावत् संख्यात असंख्यातवें भाग भी

नहीं पासकता, सम्यक्त्वी की संवर औ निर्जरा दोनू धर्म है एक वक्त सम्यक्त्व पाजाने से अनन्त संसारीका प्रति संसारी होता है, इस लिये कहना है सम्यक्त्व का पाना ही दुर्लभ है शास्त्रोंमें कहा है, चत्तारि परमङ्गाणि दुल्लहाणीह जंतुणो माणुसत्तं। सुयीसद्धा संजमंमीय वीरियं ॥ १ ॥

अर्थात्—मनुष्य भव १ श्रुत कहिये सिद्धान्त श्रवण २ सत्य श्रद्धान ३ संजममें बल पराक्रम ४ यह च्यार परम अङ्ग जीवको अति दुर्लभ हैं।

तथा कहा है—"सद्धा परम दुल्लहा" याने सुद्ध सरधना महा दुर्लभ है, श्री वीतराग प्रभुने केवल ज्ञान केवल दर्शनसे लोकाऽलोक के भाव देखा, वैसाही कहा है उनके वचन सुनके यथार्थ श्रद्धाकरना और आस्था प्रतीति रखना उसीका नाम सम्यक्त है, सम्यग्दृष्टि के जिन वचन ही अर्थ परमार्थ है, जिन प्रणीत धर्म से उनके हाड और हाड़ों की मींजी रंगी हुई है वह समदर्शी देवताओं के डिगाए भी नहीं डिग सकते, सम्यग्दर्शन में ही सदा अचल और अटल है, स्वामी भीखनजी ने भी ढालमें कहा है,—"दिढ़ समकित धर थोड़ला" याने दृढ़ सम्यक्त्व धारी बहुत

थोड़े हैं. स्वामी भीखनजी कौन थे कब हुए और कैसी प्ररूपणा करी यदि इन सब बातोंको यथार्थ जानना है, तो भिक्षु चरित्र वाचने से मालूम, हो जायगा, स्वामी भीखनजी इस भरत क्षेत्र पंचम कालमें मानूं जिनराज वत् हो गये हैं।

जैसा रागद्वेष रहित निर्मल मार्ग श्रीवीतराग प्रभुका है ज्यो श्रमण माहणका आदेश और उपदेश मतहणू मतहणों है, वोही आदेश और उपदेश स्वामी भीखनजी का है, साधु और श्रावक धर्म श्रीवीर-प्रभुने सूत्रोंमें कहा है, वैसाही कथन स्वामीजी का है, लेकिन बहुतसे लोग कहते हैं भीखनजीने दयाधर्म को उठादिया और गुरूसे लड़ झगड़ के अलग हो अपना मजहब अलग जमालिया इत्यादि अनेकानेक बातें मनमाने सो भोले भाले लोगोंको बहकाने के लिये या अपनी उन्नति के लिये कह रहे हैं मगर न्यायवादी पुरुषको जरा सोच विचार लेना परमावश्यक है देखो श्रीभगवानने तो कहा है पृथ्वी आदि षट् कायोंके जीवोंको न मारना, न मराना, न अपने शरीरसे किसी प्राणीको कष्ट देना; भय नहीं उपजाना, वो ही अभय दान है परन्तु एकेन्द्रियको मार-

कर पंचेन्द्रियको साता उपजाने में धर्म नहीं कहा है असंजतीका जीवितव्य और बाल मरण वांछणे में एकान्त पाप ही कहा है। धर्मार्थ हिंसा करने में दोष नहीं यह वचन अन्यतीर्थियों के है श्रीआचाराङ्ग सूत्रमें खुलासा कहा है, ऐसी अनेक बातें स्वामी भीखनजीने कही है—न्यायाश्रयी पुरुष पक्षपात छोड़कर स्वामी कृत ग्रंथ चोपाई बोल थोकड़ा ढाल स्तवन वगेरह पढ़ेंगे तो साफ मालूम हो जायगा कि स्वामी की प्ररूपणा और भगवानकी प्ररूपणामें फरक नहीं है। मोक्षाभिलाषी जीवोंको तबही कहते हैं कि हे प्रियवरों यह मनुष्य जन्म, आर्य क्षेत्र, उत्तम कुल, पाया है तो शुद्ध संजम पालने वाले मुनिराजों से सूत्र सिद्धान्त श्रवण करो, जिन वीर प्रभुको सर्वदर्शी सर्वज्ञ मान रहे हो तो उन्होंका कथन जो जिनागम हैं सो सुनो, केवल सुनके ही न रहो सत्य सरधो और यथा शक्ति व्रत धारण करो, अव्रत घटावो, तब इस जीवका भला होगा, भ्रष्टाचारियों की संगतसे पक्ष पातमें पड़के शुद्ध आचार पालने वालोंके निन्दक मत बनो, शुद्ध पंचमहाव्रत पालने वाले. ४२ दोष टालकर आहार पानीके लेने वाले, पंचेन्द्रीके विषयों को जीतने वाले जतीलोगोंके उपासक बनो तब सब

वातें जो सूत्रोंमें कही है मालूम होगी।

देखो अपने पूज्य वा पूर्व ऋषियोंने क्या क्या वाक्य कहे हैं, अहिन्सा सत्य, अदत्ता दानानि वर्त्तन, ब्रह्मचर्य्य. निर्लोभतादि ही शिव मार्गकी साधना कही है। देखो विजय देव सूरीने क्या आत्महितो-पदेश कहा है।

चेतोरे चेतो प्राणियां, मति राचोरे रमणीरे संगके सेवोरे जिनवाणी ॥ ए आंकड़ी ॥

सुरतरुनीपरे दोहिलोरे, लाधो नर अवतार। अहलो जनम किम हारिये, कांई कीज्योरे मनमांहि विचार के ॥ चेतो रे० ॥ १ ॥ पहली तो समकित सेविये रे, जेछे धरमनो मूल। संजम समकित वाहिरो, जिन भाख्यो रे तुस खंडवा तुल्य के ॥ चेतो रे० ॥ २ ॥ अरिहन्त देव आराधज्यो रे, गुरु गिरवा शुद्ध साध। धर्म जिनेश्वर भाषियो, ए समकितरे सुरतरु समलाध के ॥ चेतोरे० ॥ ३ ॥ तहत करीने शरधज्योरे, जे भाख्यो जगनाथ। पांचोही आस्रव परिहरो, जिममिलियेरे शिव पुरनो साथके ॥ चेतोरे० ॥ ४ ॥ जीव वंछे सर्व जीवणोंरे, मरण न वंछे कोय। आपसमं कर लेखवो, त्रस थावररे हणज्यो

मत कीयकी ॥ चेतोरे० ॥ ५ ॥ अपजश अकीर्ति हुवा भवेंरे, पर भव दुःख अनेक। कूड़ कहतां पामिये, कांई आणोंरे, मन माहि बिवेक की ॥ चेतोरे० ॥ ६ ॥ चोरीलेवे कोई पर तिणोंरे तिणथी लागेछे पाप। तो धन कंचन किम चोरिये तेहथी बांधेरे भव भवमें संताप की चेतोरे० ॥ ७ ॥ महिला संगे दूहव्यारे, नव लख सन्नी उपजन्त चणेक सुखरे कारणे किम कीजेरे हिंसा मतिवन्त की ॥ चेतोरे० ॥ ८ ॥ पुत्र कलत्र घर हाटनोरे, ममता मत कीजो फोक जेह परिग्रह मांहि छे, ते तो छाडीरे गया बहुला लोक की ॥ चेतोरे० ॥ ९ ॥ अल्प दिवसनों पाहुणोंरे, सहुको दूण संसार। एक दिन उठी जावणों, कुणजाणोंरे किणही अवतार की ॥ चेतोरे० ॥ १० ॥ व्याधि जरा ज्यां लग नहीं रे, तहां लग धर्म संभाल। धारा सजल घन वरसतां, कुण समरथरे बांधेवा पालकी चेतोरे० ॥ ११ ॥ अंजलीनां जल नी परे रे, क्षण क्षण छीजे छे आव। जावेते नहिं बाहुडे, जरा घालेरे जोबन में घाव की ॥ चेतोरे० ॥ १२ ॥ मात पिता बन्धव बहुरे, पुत्र कलत्र परिवार। स्वारथ लग सहुको सगा, कोई पर भवरे, नहिं राखण हारकी ॥ चेतोरे० ॥ १३ ॥ क्रोधमान माया तजोरे,

लोभ न करजो लिगार। समता रस पूरी रहा, वले दोहिलोरे मानव अवतारकी ॥ चेतोरे० ॥ १४ ॥ आरम्भ छोड़ो आतमारे, पीवो संजम रस पूर। शिव रमणी वेगावरो, इम भाषेरे विजय देव सूरकी ॥ चेतोरे० ॥ १५ ॥ इति ॥

प्रियवरों इम ढालका अर्थ समझो, न्याय दृष्टि से देखो, विशुद्ध बुद्धिसे विचारो, विजय देव सूरीने क्या कहा हैं, पंचास्रव द्वार सेने सेवाने में एकान्त पाप कहा है, किंचित् भी आस्रव द्वार सेने सेवाने में धर्मका लेश नहीं हैं. सम्यक्त्वका सेवनाही मुख्य कहा है, शुद्धदेव गुरु धर्मकी साधना ही सम्यक्त्व और शिव मार्ग है।

कई लोग कहते हैं जिस प्रतिमा की पूजा जल, चन्दन, पुष्पादि अष्ट द्रव्योंसे करना यह श्रावक धर्म है, द्रोपद राजाकी पुत्री द्रौपदीने पूजा करी है, तथा देवलोकांमें देवता पूजन करते है, जिसका उत्तर यह है, देवता श्रावक नहीं है देवता तो मिथ्यात्वी व सम्यक्त्वी दोनू ही प्रकार के हैं, मिथ्यात्वी है उनमें पहला गुणस्थान है सम्यक्त्वी है, उनमें चतुर्थ गुणस्थान है, लेकिन पञ्चम गुणस्थान जो श्रावक पद

है वह किसी भी देवतामें नहीं है, तो प्रतिमा पूजना श्रावक धर्म कहां रहा 'ग्रामोनास्तितर्हिसीमां विवादः क्व' याने गांव नही है वहां सीमाकी लड़ाई क्यों ग्राम विना सीमा नहीं होती, तथा द्रौपदीने प्रतिमा की पूजन करी उस वक्त उसमें सम्यक्त्व थी ऐसा सूत्रमें भी नहीं कहा है और उस वक्त सम्यक्त्वका होना भी संभव नहीं है क्योंकि द्रौपदीने पूर्व भवमें पांच भरतार वरने का नियाणा किया था ऐसा तीव्र रसका निधान पूर्ण हुए विना सम्यक्त्व कैसे फरस सकती है, तथा आचार्य गन्धहस्ती ने उघनिर्युक्ति कामें द्रौपदीके एक पुत्र होनेके बाद सम्यक्त्वकी स्पर्शना कही है और स्वयंवरा मण्डपमें आते वक्त द्रौपदीने पूजन करी ऐसा अधिकार श्रीज्ञाता सूत्रमें कहा है तो उस वक्त द्रौपदीके काम भोगकी तीव्राभिलाषा स्पष्ट दीखती है, इसलिये उस वक्त समकित का होना असंभव है। आनन्दादि दश श्रावकोंका वर्णन श्रीवीर प्रभुने उपासक दसा सूत्रमें कहा है, तहां कहीं भी प्रतिमा पूजनेका अधिकार कहा नहीं, श्रावक धर्म द्वादश व्रत रूप है उनका वर्णन विस्तार पूर्वक कहा है, ज्यो व्रत है वो श्रावक धर्म है अव्रत है वह अधर्म है, देवलोकोमें जो

देवता जिन प्रतिमा पूजते हैं। वो उपजते ही राज्याभिषेक समय शस्त्र प्रतिमा पूतली आदि ३२ बत्तीस प्रकार कि वाने' को पूजन करते हैं उनकी मर्यादा वही है हितकारी सुखकारी विघ्न निवर्तक और फल सहित उनको इस भवमें पुन्यानुसार पूर्व पश्चात् है, संसारी मंगल है, अगर धार्मिक कार्य हो तो केवल समदृष्टि ही को पूजना चाहिये मिथ्यात्वी तो धर्म अधर्म समझते नहीं लेकिन देवलोक की मर्यादा राज बैठने कि वक्त जो है सो सब उनकों करनी पड़ती ही है मिथ्यात्वी हो वा सम्यक्त्वी हो, भव्य हो या अभव्य हो सब ही करते हैं पर द्रव्य पूजा करने में जिनाज्ञा कैसे हो सकती है, जो जिनाज्ञा वहिष्कृत है वो सावद्य है, और सावद्य कार्य से एकान्त पाप कर्म का ही बन्ध है, श्रावक कि सामायक पोषह मे सावद्य जोगका त्याग है इसलिये द्रव्य पूजा नहीं करता, भाव पूजा जो वन्दना जयणा युक्त गुणगाना नमस्कार करना सिद्धान्त सुनना स्वाध्यायादि करना इत्यादि निरवद्य कार्यकी जिनाज्ञा है वे सब कार्य सामायक पोषह मे करता कराता और अनुमोदता है और वैसे ही कार्य से अशुभ कर्म निर्जरता है, तथा सूरियाभदेव जब प्रथम देव

लोकसे अपने परिवार सहित भगवत् श्रीमहावीरस्वामी के पास आया तब भगवन्तसे पूछा मैं आपको वंदना करूं तब प्रभुने कहा यह तुम्हारा पुराना आचार है १ जीत आचार है २ यह तुम्हारा कार्य्य है ३ यह तुम्हे करने योग्य है ५ मेरी आज्ञा है ६ ऐसा कहा और नाटक करने के लिये पूछा तो आदर नहीं दिया मौन रक्खी और मनमें भला नहीं जाना ऐसा खुलासा पाठ श्रीरायप्रसेणी सूत्र में है, तो न्याय वादी और निरपक्षीको विचारना चाहिये कि साक्षात् त्रैलोक्य नाथ भगवन्त श्रीमहावीरस्वामीने अपने मुख आगे ही नाटक करने की आज्ञा नहीं दी और भला भी नहीं जाना तो स्थापना निक्षेपा के आगे नाचना कूदना ताल मंजीरे आदि बजाना तथा एकेन्द्री जीवोंको विनाश करने की आज्ञा कैसे हो सकती है, जब श्रीवीर प्रभुने जिस कार्य्यको अच्छा ही नहीं जाना तो उनके साधू साध्वी श्रावक श्राविका अच्छा कैसे जान सकते हैं सम्यग्दृष्टि जीव जबतक सर्वव्रती नहीं हुआ है जब तक संसार में अनेक कर्तव्य करना है परन्तु धर्म तो वैसे ही कार्य्य में समझेगा जिस कार्य्य में जिनाज्ञा है, जिनाज्ञा बाहर के कार्य्य में सम्यग्दृष्टि तो कदापि धर्म नहीं

समझ सकता। देखो पार्श्वचन्द्र सूरीने क्या कहा है—

ढाल पार्श्वचन्द्र सूरी कृत।

दुलहो नर भव पामयों जीवनें, दुलहो श्रावक कुल अवतारो, गुणवन्त गुरुनों संग छे दोहिला ते पामीने मन हारो रे प्राणी जीवदया व्रत पालो ॥ १ ॥ आस्रव प्रति पक्ष संवर बोल्यो, तेहनी रहस्य विचारो, आरम्भ आस्रव संजम सम्वर, इमजाणी जीव म मारोरे ॥ प्राणी जी० ॥ २ ॥ जीव सहू ते जीवणूं वञ्छे, मरणूं न वञ्छे कोई आपण दुःख छे जिम छे परने, हिये विमासी जोईरे ॥ प्राणी जी० ॥ ३ ॥ अङ्ग उपाङ्ग शस्त्र धारा अणीसूं. नख चख छेदे कोई, जेहवी वेदना मनुष्यने होवे तेहवी एकेन्द्रीने होईरे ॥ प्राणी जी० ॥ ४ ॥ जो जरा पुरुषनें बलवन्ततरुणो, देवे मुष्टि प्रहारो। जे दुःख वेदे तेहवो एकेन्द्रिने, लीधां हाथ सम्भारोरे ॥ प्राणी जी० ॥ ५ ॥ समकित बिन गज भव सुमलारी, दया चोखे चित पाली; प्रति संसार कियो तिण ठामें, मेघ कुँवर हुओ दुखटालीरे ॥ प्राणी जी० ॥ ६ ॥ अभय दान दाना मांहि मोटो, बलीदान सुपात्रें दाख्यो। आगम

सांभलने जिनमत जोवो, मूलदया धर्म भाष्योरे ॥ प्राणी जी० ॥ ७ ॥ लोह शिला ज्यो तिरै महोदधि, कदा पश्चिम ऊगे भानू ॥ सहज अग्नि पण शीतल होवै, तोहो हिंसामें धर्मम जाणूरे ॥ प्राणी जी० ॥८॥ रवि आंथमियां दिवस विमासे, अहिमुख अमृत जोवै ॥ विषखायां वली जीवणूं वाञ्छै तो हिन्सामें धर्म होवैरे ॥ प्राणी जी ॥ ९ ॥ अग्नि सीचीनें कमल बधारै, चोर धोवा नें कादो आणें ॥ ज्यों कुगुरु प्रसंगी मूरख मानव, जीवहणै धर्म जाणें ॥ प्राणो जी० ॥ १० ॥ आगम वेद पुराण कुरान में कह्यो दया धर्म सारो ॥ वलि जिनजीरा बचन सांचा जाणूं तो, छकाय जीवांनें मत मारोरे ॥ प्राणी जी० ॥ ११ ॥ अर्थ अनर्थ धर्म जाणीनें, जीवहणै मन्द बुद्धि ॥ पिण धर्म काजे छकायहणें त्यारी, सरधा घणीछै औंधीरे ॥ प्राणी जी० ॥ १२ ॥ सूईरेनांकि सीधड़ोपोवै, ते किम आघो पैसे ॥ हिंसा मांहि धर्म प्ररूपे, ते सालो साल न बेसैरे ॥ प्राणी जी० ॥ १३ ॥ पिता बिना पुत्र उत्पनो, मा बिन बेटो जायो ॥ यों हिंसामें धर्म प्ररूपै, यो मुनै अचरिज आयोरे ॥ प्राणी जी० ॥१४॥ पार्श्वचन्द्र सूरी-भणै डूण परें आणासहित करुणां पाले ते नर दुर्गति ना दुःखटाले ज्ञान कला उजवालेरे प्राणी जी० ॥१५॥ इति

अथ ढाल दूजी चाल तेहोज ।

चैत्य मन्दिर मांहि वृक्ष ज ऊग्यो, अनन्त जीवानूं वासो ॥ लोह कुहाड़ी ले आपण छेदे, कांई करो दुर्गति वासोरे मुनिवर हिंसा धर्म कांई भाखो ॥ १ ॥ सांच कहै तो ते नहिं मानै, कूड़ कहै ते कीजे ॥ असत्य भाषीनें हीणाचारी, ते गुरु कर आघालीजेरे ॥ मुनि ॥ २ ॥ चारित्र पाली मुक्ति पहुंता, तें मारग नहिं थापो । मूढ़ मती होई जीव विराधो, न्याय-करो एहवो पापोरे ॥ मुनि० ॥ ३ ॥ धर्म उथापो नें हिंसा थापो, छक्काय रा प्राण लुटावो । धर्म तणूं छांटो नहिं मांहि, अहलो जन्म गुमावोरे ॥ मुनि० ॥ ४ ॥ वनमें बावरी बावर मांडे, लोकामें हुवै पुकारो । भगवन्त आगलि बावर मांड्यो लाखां कोड़ारो संहारोरे ॥ मुनि० ॥ ५ ॥ उणानें चाम चाहिजे नैं मांस खाईजे पेटरे कारण खावै । वै जीव वीराधिनें मन पछतावै थारो ज्वाब न आवैरे ॥ मुनि० ॥ ६ ॥ थे चाम न भीटो मांस न खावो कांई तुम जीव हणावो । थे भगवन्त माथै दूषण द्योछो न्याय तुमे दुर्गति जावोरे ॥ मुनि० ॥ ७ ॥ खाजा लाडू सेव सुहाली भर भर थाल्यां लावो वै त्यागी थे भोग लगावो कांई तुमें दुर्गति जावोरे ॥ मुनि०

॥ ८ ॥ कई श्रावक राते अन्न न खावे तुमे देवने कांई चढ़ावो। मारग छोड़ कुमारग चाल्या एकरणीसें दुःखपावोरे ॥ मुनि० ॥ ६ ॥ भगवन्त वचन नौं प्रतीति नहीं छे तिणथी फेन करावो। देव लोक थी तो डरैं जाणोंजे निश्चै निगोदमें जावोरे ॥ मुनि० ॥ १० ॥ देवरे कारण छक्काय हणावो, गुरुरे कारण खावो। धर्मरै कारण हँस हँस ल्यावो थे किणरै नांव कुड़ावोरे ॥ मुनि ॥ ११ ॥ प्रीति पुराणीं थासूँ पहली हूंतो तिणसूं थाने चितराऊं। मैं म्हारो मन निर्मल कीधो जिनमारग गुण गाऊंरे ॥ मुनि० ॥ १२ ॥ भावकरीनें भगवन्त पूजो द्रव्यै दूर करावो। सुखि समाधि मोक्ष पधारो बहुला सुख जिम पावोरे ॥ मुनि० ॥ १३ ॥ साधू तो छक्कायनां पियर थे कहि कहि कांई हणावो। अरज हमारी सांचीं मानूं फेर चौरासी में नहि आवोरे ॥ मुनि० ॥ १४ ॥ पार्श्वचंद्र कहे चारित्र लेई आरम्भ थी मनटालो। वीर वचन थे सांचा परूपो सूधो संजम पालोरे ॥ मुनिवर हिंसा धरम कांई भाखो ॥ १५ ॥ इति।

अब विवेकी जीवों को पक्ष पात रहित होकर विचारना चाहिये कि केवल स्वामी भीखनजीने ही

द्रव्य पूजाको सावद्य नहीं कहा है स्वामी भीखनजीके हुए पहले जो आचार्य और जती हुये उनमें से बहुत सोने कहा है, देखो महानिशीथ सूत्रके पंचम अध्ययन में कमल प्रभाचार्यने कहा है जिनालय सर्व सावद्य है मुझे आचरणे योग्य और प्ररूपणा योग्य नहीं है तथा श्रीभगवन्त महावीर स्वामी निर्वाण हुए ९८० वर्ष पीछे श्रीदेवर्द्धिगणी सूत्र लिखे उनसे ५५ वर्ष पीछे हरिभद्र सूरी स्वर्ग हुए जिन्होंने महानिशीथ सूत्रका उद्धार किया और चैत्यवास खण्डन किया अभय देव सूरीके गुरु जिनेश्वर सूरी तथा बुद्धिसागर सूरी सं० १०८४ में दुर्लभ देवकी सभामें चैत्य-वासियोंसे विवाद कर जय प्राप्त हुये उनके प्रशिष्य जिनवल्लभ सूरीने जिनागमका पक्ष ले ४० काव्यका संघपट्ट ग्रन्थ बनाया उन्होंने चैत्यवासियोंका तथा शिथिलाचारियोंका भेषधारियोंका कैसा खण्डन किया है वो संघपट्ट ग्रन्थ वाचनेसे स्पष्ट मालूम हो सक्ता है जिन प्रतिमा यात्राके लिये संघपट्ट को २१ वीं गाथामें कहा है कि—

काव्य २१ वां संघपट्टक ग्रन्थका ।

आकृष्टं मुग्ध मीनान् वड़िश पिशितव द्विंबमादर्श्य जनं । तन्नामारम्यरूपानपवरकमठान् स्वेष्ट सिद्धै

विधाप्य ॥ यात्रास्नात्राद्युपायैर्नमसितकनिशा-
जागराद्यैश्छलैश्च । श्रद्धालुर्नाम जैनैश्छलितइव
शठैर्वंच्यते हा जनोऽयम् ॥ २१ ॥

भावार्थ ।

अर्थात् जैसे मच्छीगर मच्छी पकड़ते समय लोहेके कांटे पर मांस लगाके मच्छियों को ललचाके जालमें पकड़ते हैं वैसे ही द्रव्य लिंगी भेषधारी स्व स्वार्थके लिये मूर्ख लोगों को जिन विम्ब दिखाके और यात्रा स्नात्रका महाफल बताके श्रद्धालु जैनियों को छल रहेहैं याने मोक्षमार्ग से विमुख कर भवसागर में डबोते हैं।

जिन वल्लभ सूरी नें मूलकाव्य में ऐसा कहा है उनके पाट श्रीजिनदत्तशूरि दादाजी हुए उन्होंने भी सिथिलाचारी द्रव्य लिङ्गी तथा चैत्य वासियोंका खण्डन किया है उनके पाट जिन पतिशूरि हुए उन्होंने संघपटक ग्रंथ ४४ काव्योंकी टीका करीब तीन हजार श्लोक प्रमाण करी ये सब अधिकार पुस्तक संघ पट्टक छपी हुई के प्रस्तावना में कहा है. तथा अर्थ करने वालोंने अपनी श्रद्धानुसार कई जगहें विपरीत अर्थ किया है परन्तु मूल काव्य २१ वांमे तो जिन वल्लभ शूरीने जो कहा वो ऊपर लिखा ही है, तथा द्वादसांग रूप श्रीजिनवचन गणधर रचित हैं उन्होंमें जगहे जगहें पञ्चमहाव्रतमयी या द्वादसव्रतमयी धर्म कहा है जीव हिंसाका फल महा दुःख दायी ही कहा है प्रथम अङ्ग श्रीआचाराङ्ग सूत्रमें देवल या प्रतिमा के लिये पृथ्वी काय हणे उसे मन्द बुद्धी कहा है परन्तु कई आचार्योंने ग्रन्थोंमें मूल सूत्रोंसे विपरीतार्थ कर अशुद्ध प्ररूपणा करी तथा सिथिला चारी कर रहे हैं कहते हैं साधूको तो कल्पता नहीं लेकिन श्रावक का धर्म है, जल चन्दन अक्षत पुष्प धूप दीप फल नैवेद्य आदि द्रव्योंसे जिन प्रतिमाको पूजना द्रव्य खर्चकर मन्दिर बनवाना सारङ्ग तबले आदि वजित्रों द्वारा गाना, नृत्य करना, तीर्थ करोंकी भक्ती हैं इससे महा

पुन्योपार्जन होता है और मुक्ति मार्ग है, ऐसी प्ररूपना करते हैं परन्तु बुद्धिमान मोक्षाभिलाषियों को निरपक्ष होके विचारना चाहिये तीर्थंकर देव निरारम्भी थे या आरम्भी थे ? सर्वज्ञय पुरुष सावद्य के त्यागी थे या भोगी ? सचित द्रव्यका संघट्टा करते थे या नही, अचित वस्तु भी उनके लिये कोई गृहस्थ किसी वक्त करता तो उसे लेते थे या नहीं ऐसा विचारना तो वाजिव है, यदि वो श्रीवीतराग प्रभु सचित वस्तुका संघट्टा नही करते कराते थे तथा करने में महा दोष समझते थे और अपने शिष्य साधू साध्वियोंको निर्दोष आचार पलाते थे ऐसा ही प्ररूपते थे तो फिर उन्ही पुरुषोंकी ध्यानारूढ़ प्रतिमा बनाके उसे जिन समान समझके जिस जिस वस्तुओं के वो त्यागी थे इन्ही वस्तुओंका स्पर्श कराना और भक्ति समझ उनके आगे चढ़ाना ज्ञान है या अज्ञान ? तथा हिंसा करके धर्म समझना समकित है या मिथ्यात्व ? सावद्य जोग हैं या निरवद्य जोग ? अगर द्रव्यपूजा करना निरवद्य जोग हैं तो साधू मुनिराज क्यों नहीं करते तथा श्रावक सामायक पोषहमें क्यों नही करते ? लेकिन करें कैसे सावद्य जोग है जिनाज्ञा वाहर हैं, जब करना नही तो कराना और करते हुएको अनुमोदने में धर्म कैसे हो सक्ता है जिनवल्लभ शूरिने मूल काव्यमें कहा सो ऊपर कहा ही है, पार्श्वचन्द्र शूरिकृत ढालमें और कमल प्रभाचार्यने महानिशीथ सूत्रमें क्या कहा है अथवा लूंकाजी आदि अनेकोंने द्रव्य पूजामें धर्म नही कहा है, तब कोई ऐसा कहै कि तुम जिस आचार्य और जातियों को मानते ही नहीं हो तो फिर उनका कथन की साक्षी क्यों देते हो जिसका उत्तर यह है कि जो वचन एकादश अङ्गसे मिलते हुए हैं वोह सब हमको मानने योग्य है और मानते हैं केवल हमें ही क्या सब सम्यग्दृष्टि ही एकादश अङ्गके अनुकूल वचन ज्यो हैं उन्हे सत्य मानते हैं और जो एकादश अङ्गसे प्रतिकूल वचन है वोह असत्य मानते हैं किन्तु सत्य को सत्य समझने से वक्ताको सर्व वक्तृता सत्य मानना ऐसा कदापि सिद्ध नहीं हो

सक्ता, देखो श्रीभगवती सूत्रमें कहा है सोमल ब्राह्मण भगवत श्रीमहावीर स्वामी को पूछा सरसव भक्ष है या अभक्ष, तब भगवन्तने उस ही के शास्त्रका प्रमाण देके फरमाया है कि सोमल तुम्हारा ब्राह्मण संबन्धी शास्त्र में सरसवके दो भेद कहे है मित्रसरसव १ धान्य सरसव २ इत्यादि विस्तार पूर्वक अधिकार है, तो भगवतने ही अन्य मतीके शास्त्रकी साक्षी देके समझाया तो उनके साधु साध्वी श्रावक श्राविका अगर किसी वक अन्य शास्त्रकी या आचार्योंके बनाये हुए ग्रन्थोंको साक्षी देके युक्ति पूर्वक दृष्टान्तों उदाहरण देके उसको दृढ़ प्रत्यक्ष करा देवें तो क्या दोषकी बात है ज्यो सत्य बात है वोह तो सत्य ही रहेगी जी चाहे सो कहो मिथ्यात्वी या सम्यक्त्वी लेकिन सत्य बार्ताको सत्य ही समझी जायगी न्यायवादी उसे शास्त्रानुकुल ही कहेंगे, जिनोक्त शास्त्रोंमें भी जगह जगह अहिंसा धर्म ही कहा है, धर्म हेतु जीवहण्यां दोष नही यह वचन तो अनार्य लोगोका है आचाराङ्ग सूत्रमें खुलासा पाठ है, तथा देवल प्रतिमाके लिये पृथ्वी आदि हणे उसे मन्द बुद्धि श्रीदशमां अंगमे कहा है मगर प्रतिमापूजने जीवों की हिंसा का दोष नही ऐसा वाक्य गणधर कृत शास्त्रों में कहीं भी नहीं है, इसीलिये जैन धर्मानुरागियोंसे नम्रताके साथ ऊपर कही और कह रहे हैं हे देवानुप्रियो निरपक्षी होके विचारो श्रीजिन आज्ञा बाहरका कर्त्तव्य एकान्त सावद्य ही है उसमें जिन प्रणीत धर्मका लेश न समझो, प्रथमांगमें भगवतने यही कहा है मेरी आज्ञा में मेरा धर्म है इसीलिये कहना है धर्माधर्म को यथार्थ समझकर जिन वचनोंकी आस्था प्रतीत रखना उसी का नाम दृढ़ समकित है, समकित धारी जबतक सर्व व्रती नहीं हुआ है तबतक खाना पीना पहरना ओढ़ना स्नान करना कामभोगसेना द्रव्य संग्रह करना मट्टी गोबर दधि दोब अक्षत तथा कुलदेवी देवताओंको पूजना संसारिक मंगल करना विवाह समय या अन्य समय जिन प्रतिमा को पूजना आदि स्व पर अर्थ अनेक जिन आज्ञा

वाहर का कर्त्तव्य करता कराता है लेकिन जिनाज्ञा बहिष्कृत कर्त्तव्य में धर्म कदापि नहीं समझता, क्षायक या क्षयोपशम समकित धारी तो अनेक सावद्य कार्य करता कराता है व्योपार वाणिज्य संग्राम दगाठगा पुत्र पोत्रादि का विवाह और कुलक्रम करता है परन्तु जिन आज्ञा वाहर का कार्य में धर्म नहीं, वैसे ही देवलोक मे देवता जिन प्रतिमादि ३२ प्रकार के वाने पूजते हैं वो उनकी स्वर्ग स्थिती है सव ही को करना होता है अहस्थ लाय से द्रव्य निकालके ल्यावे उसको पूर्व्व पच्छा थान पूर्व पश्चात् हितकारी, सुखकारी, मोक्षदायी और फलदायक शास्त्रों में कहा है, वैसाही प्रतिमा पूजने से जानना चाहिये, क्योंकि दोनू जगह एकसा पाठ हे परन्तु जिसके मोहकर्मका प्रवलोदय है उनको शास्त्र शस्त्रवत् परणमे है वो विपरीत अर्थ करके हिंसामे या जिनाज्ञा वाहर धर्म प्ररूपते हैं, और जिन वन्दन समय या चारित्र लेने से पेचा पच्छा है तो समझना चाहिये ए पर भवके लिये हैं; न्यायाश्रयी और जिन आज्ञा मे धर्म समझने वाले जिनधर्मी तो जिनाज्ञा वाहर धर्म कदापि नहीं समझ सकते, उनको तो जिन वचन ही अर्थ और परम अर्थ है उनकी जिन प्ररूपित धर्म ही से हाड़ की मींगी रङ्गरत्ता हे ऐसे दृढ़ समकित धारी जीव वहुत थोड़े हते हैं सोही स्वामी भीखनजीने ढालमें कहा है।

॥ ढाल स्वामी भीखनजी कृत ॥

दृढ़ समकित धर थोड़ला, समकित विन शिव-दूर। भवियण। भव्यजीवां तुमे सांभलो, पामै विरला शूर ॥ भवियण ॥ दृढ़ समकित धर थोड़ला ॥ ए आंकड़ी ॥ १ ॥ समकित समकित कर रह्या, मर्म न जाणै कोय ॥ भ० ॥ जिण घट समकित परगमे, ते घट विरला होय ॥ भ० दृढ़० ॥ २ ॥ तिण घट

समकित रूपियो, ऊग्यो सूरज सार ॥ भ० ॥ जिण घट हुवो चांदणों, दूरगयो अन्धकार ॥ भ० ॥ दृढ़ समकित धर थोड़ला ॥ ३ ॥

भावार्थ।

कहते हैं कि दृढ़ समकित धारी जीव थोड़े हैं सम्यक्त्व विनां शिव कहिये मोक्ष वहुत दूर है इसलिये भव्यजनों तुम सुनो सम्यक्त्व कोई विरला शूरवीर ही पाते हैं, जगतमें समकित समकित सवही कह रहे हैं लेकिन मर्म नहीं जानते, जिस पुरुष के हृदय में सम्यक्त्व परगमी और जिसके हृदय में सम्यक्त्व परितः सर्वतः रमरह्या है ऐसे कोई विरले हलुकर्मी है, जिनके हृदयमें सम्यक्त्व रूप सूर्योदय हुआ है उनके मिथ्यात्व मयी अन्धकार दूर होके अलौकिक प्रकाश हो रहा है लेकिन ऐसे वहुत थोड़े हैं उदाहरण देकै कहते हैं जैसे सुनो—

॥ ढाल ॥

सरसर कमल न नीपजै, बन बन अगर न होय ॥ भ० ॥ घर घर सम्पति न पामीये, जन जन पण्डित न होय ॥ भ० ॥ दृढ़ ॥ ४ ॥ गिरिवर गिरिवर गज नहीं, पोल २ नहीं प्रासाद ॥ भ० ॥ कुसुम कुसुम परिमल नहीं, फल फल मधुर न स्वाद ॥ भ० दृढ़ ॥ ५ ॥ सवहि खान हीरा नहीं चन्दन नहीं सब वाग ॥ भ० ॥ रत्न रासि जिहां तिहां नहीं, मणिधर नहीं सब नाग ॥ भ० ॥ ६ ॥ सवहि पुरुष शूरा नहीं, सगला नहीं ब्रह्म-चार ॥ भ० ॥ नारी नहीं सवें सु-लक्षणी, विरला गुण भण्डार

॥ भ० दृढ़० ॥ ७ ॥ सगला गिर सुवरण में नहीं, नहिं करतूरी ठामों ठाम ॥ भ० ॥ सबही सीप मोती नहीं, केशर नहीं गामो गाम ॥ भ० दृढ़० ॥ ८ ॥ सबने लब्धि न ऊपजे, सघला मुक्ति न जाय॥ भ० ॥ सघला सिंह न केशरी, साधू किहां २ जमात ॥भ०दृढ़० ॥ ९ ॥ तीर्थंकर चक्रवर्त्तनी, पदवी बड़ी पिछाण ॥ भ० ॥ सघला जीव पामें नहीं, तिम पण समकित जाण ॥ भ० ॥ दृढ़ समकित घर थोड़ला ॥ १० ॥

भावार्थ।

सरोवर द्रह तलावादि सब ही में कमल सहस्रवल तथा सामान्य कमल नहीं होते ॥ १ ॥ सब वनोपवन बगीचोंमें अगर वृक्ष कृष्णागरादि महा सुगन्धी वृक्ष नहीं होते ॥ २ ॥ सब ही गृहस्थों के घरमें सम्पत्ति कहिये ऋद्धि नहीं होती ॥ ३ ॥ सब ही मनुष्य पण्डित याने सत्यासत्य जानने वाले नहीं होते ॥ ४ ॥ सब ही पर्वतों में हाथी नहीं होते ॥ ५ ॥ दरवाजे २ ऊपर महलायत नहीं होती ॥ ६ ॥ सर्व जातिके पुष्प सुगन्धित नहीं होते ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण जातिके फल मधुर नहीं होते ॥ ९ ॥ सबही खानोमें हीरकादि बहु मूल्य उत्तम रत्न नहीं होते ॥ १० ॥ सब वनोपवनमें चन्दनका वृक्ष नहीं मिलता ॥ ११ ॥ बहुमूल्य रत्नोंकी राशि सर्वत्र नहीं होती ॥ १२ ॥ सर्व सर्प मणिधर नहीं होय ॥ १३ ॥ सब ही पुरुष शूरवीर याने सर्व कुशल नहीं हो सकते ॥ १४ ॥ सब स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य धारी नहीं होते ॥ १५ ॥ सर्व स्त्रियां सुलक्षणी नहीं होती ॥ १६ ॥ सब ही गुणवान नहीं होते गुणी विरले ही होते हैं ॥ १७ ॥ सर्व पर्वत सुवर्णमय नहीं ॥ १८ ॥ जगह जगह कस्तूरी नहीं होती

॥ १६ ॥ सब ही सीपोंमें मोती नहीं ॥ २० ॥ ग्राम ग्राममें केशर नहीं ॥ २१ ॥ सब ही तपस्वी लब्धि धारक नहीं होते ॥ २२ ॥ सब प्राणी मोक्ष नहीं जाते ॥ २३ ॥ केशरी सिंह सब ही नहीं होते ॥ २४ ॥ मण्डल और जमातों में सब साधू नहीं होसकते ॥ २५ ॥ तीर्थङ्कर चक्रवर्त्ती की पदवी सब जीव नहीं पासकते ॥ २६ ॥

ऐसे ही सब जीवोंको सम्यक्त्व मयी महा अमोल्य रत्नकी प्राप्ति नहीं हो सकती सम्यक्त्व का पाणां तो महा मुश्किल है ।

॥ ढाल ॥

नवोंही पदारथ मांहिलो जंघो, सरधै ज्यो एक ॥ भ० ॥ तोहि मिथ्यात्वी मूल गो, भूला भरम अनेक ॥ भ० दृढ़ ॥ ११ ॥

भावार्थ।

जीव चेतनां लक्षण १, अजीव अचेतनां लक्षण २, पुन्य शुभ कर्म ३, पाप अशुभ कर्म ४, आस्त्रव पुण्य पापका कर्त्ता ५, सम्वर अशुभ कर्मोंका रोकता ६, निर्जरा अशुभ कर्म को विखेर कर आत्म प्रदेशों को उज्वल करना ७, बन्ध शुभ अशुभ कर्मका बन्ध ८, मोक्ष शुभाशुभ कर्मोंसे सर्वतः छुटकारा ९, इन नव पदार्थों में ८ को यथार्थ सरधै और १ एक पदार्थको शङ्का सहित सरधै तो भी मिथ्यात्व ही है, अनेक जीव भ्रमसे भूल रहे हैं, मिथ्यात्वी १० पूर्व से किञ्चित् कम तक पढ़ जाते हैं, लेकिन सम्यक्त्व नही स्पर्शते मिथ्यात्वी ही हैं।

॥ ढाल ॥

दशों ही मिथ्यात्व माहिलो, बाकी रहै कदा एक ॥ भ० ॥ तोही गुणठाणों पहलो कह्यो, समझो आण विवेक ॥ भ० दृढ़ ॥ १२ ॥

भावार्थ ।

जीवको अजीव सरधै तो मिथ्यात्व १, अजीवको जीव सरधै तो मिथ्यात्व २, धर्म को अधर्म सरधै तो मिथ्यात्व ३, अधर्म को धर्म सरधै तो मिथ्यात्व ४, साधूको असाधू सरधै तो मिथ्यात्व ५, असाधू को साधू सरधै तो मिथ्यात्व ६, मार्ग को कुमार्ग सरधै तो मिथ्यात्व ७, कुमार्गको को मार्ग सरधै तो मिथ्यात्व ८, मुक्ति को अमुक्ति समझे तो मिथ्यात्व ९, अमुक्ति को मुक्ति सरधै तो मिथ्यात्व १०, यह दश प्रकार के मिथ्यात्व श्रीठाणाङ्ग सूत्रके दशमें ठाणेमें कहे हैं, उनमें से नव बोलों को सत्य और एक को असत्य सरधै तो भी प्रथम गुणस्थानो ही है इसलिये हे भव्यजनो विवेक को हृदय में ल्याके समझो ।

॥ ढाल ॥

नवतत्व ओलख्यां विनां, पहरै साधुरो भेष ॥भ०॥ समझ पड़ै नहिं तेहनें, भारी हुवै विशेष ॥ भ० हठ ॥ १३ ॥ लीधी टेक छोड़ै नहीं, कूड़ो करै पक्षपात ॥ भ० ॥ कुगुरांरा भरमाविया, बहुला बूड़ाजात ॥ भ० हठ० ॥ १४ ॥

भावार्थ ।

नव तत्व को जाने विना कई मनुष्य साधूका वेश पहर कर साधू बनजाते हैं लेकिन उनको साधूके आचार क्रिया शास्त्र वचनों की समझ नहीं पड़ती सिर्फ भेषधारी द्रव्य साधू हैं रजोहरण चद्दर पात्रादि साधूका भेष अनन्त बार ग्रहण किया और गौतम स्वामी जैसी क्रिया मिथ्यात्व पणेमें करके ग्रैवेक कल्पातीततक अनन्तीबार जीव जा पहुंचा परन्तु कुछ भी मोक्ष फलितार्थ न हुआ ।

मोहवश निथ्यात्व के रागमें जिस खोटे पक्षको पकड़ लिया फिर उसको न छोड़ना इस का कारण कुगुरु सेवना ही है जैसे नीति शास्त्रमें भी कहा है यतः ।

मतिर्दोलायते सत्यं सतामपि शतोभिरत्यादिक जो कहा है कि यह १०० सो आदमी जिस बातको कहे उस वक्त सत्पुरुषों की मति याने बुद्धि दोलायमान याने चञ्चल चपल बुद्धि से समुद्र में भ्रमण की तरह भ्रममें पडकर संसार समुद्रमें बहुत डुबते हैं इससे निरणेका मार्ग केवल शिव मार्ग है सो कहते हैं कि—

॥ ढाल ॥

दान शील तप भावना शिवपुर मारग च्यार ॥ भ० ॥ दान सुपात्र जान्यां बिना नहीं सरै गरज लिगार ॥ भ० दृढ० ॥ १५ ॥

भावार्थ ।

सुपात्र दान १ ब्रह्मचर्य २ उपवासादि तप ३ और निर्मल याने शुद्ध भावना ४ यह चार शिव कहिये मोक्षके मार्ग हैं, इसमें जो पहले सुपात्र दान कहा है, उसको यथार्थ समझे बिना अर्थात् पहले तो सुपात्र का जानना, सुपात्र किसे कहते हैं, कि जो प्राणी मात्र को किसी तरह बाधा न उपजावे, उन हीं सुपात्रों को दान कैसा किस तरह, किस भावसे देना, और देनेसे क्या फल प्राप्ती होती है इत्यादि सब बातोंको समझे बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता, इसलिये कहा है—

॥ ढाल ॥

नव तत्व सूधा धारियां, छुटै दर्शो ही मिथ्यात्व ॥ भ० ॥ समकित पावै इणविधै, मानूं सूत्रनी बात ॥ भ० दृढ० ॥ १६ ॥

भावार्थ ।

इसलिये कहना है प्रियवरो नवतत्व की शुद्ध याने यथार्थ धारणा होनेसे जो दश प्रकार के मिथ्यात्व हैं उनको त्याग करना, मिथ्यात्व के त्यागेसे ही सम्यग्दर्शनका लाभ होता है ऐसा सूत्रों में कहा है सो वचन मानूं सोही कहा है ।

॥ ढाल ॥

देव गुरू मिश्र मानें नहीं, मिश्र न मानें जिन धर्म ॥ भ० ॥ यां तीनानें जाणौ निर्मला, मिथ्यो तिणारो भ्रम ॥ भ० दृढ० ॥ १७ ॥

भावार्थ ।

देव १ गुरु २ धर्म ३ यह तीनों शुद्ध अर्थात् निर्मल गुण संयुक्त हो, देव श्री अरिहन्त संपूर्ण ज्ञान दर्शन चारित्रादि गुण सहित, गुरू निर्ग्रंथ शुद्ध साधू पंच महाव्रत धारी, धर्म शुद्ध जिनाज्ञामय अहिंसा संजम तपादिक, ये जो तीनों हैं सो सदा सर्वदा निर्मल है, गुण अवगुण सहित मिश्र नहीं है सावद्य निरवद्य मिलके मिश्र नहीं है, कदापि मिश्र नहीं होसक्ता सो कहा है ।

॥ ढाल ॥

समकित आयां नीपजै, साध श्रावक नों धर्म ॥ भ० ॥ शिव रमणी वेगा वरो, टूटै आठोंही कर्म ॥ भ० दृढ० ॥ १८ ॥ समकित बिन शुद्ध पालियो, अज्ञान पणों आचार ॥ भ० ॥ नवग्रैवेक ऊंचो गयो नहीं सरी गरज लिगार ॥ भ० दृढ० ॥ १९ ॥

भावार्थ ।

सम्यक्त्वके पाने से साधू श्रावक का धर्म होता है इसलिये सम्यक्त्व १. चारित्र २ दोनूं धर्म होनेसे मुक्ति मयी जो स्त्री है वो प्राप्त होती है. और अष्ट कर्म क्षय होते हैं सम्यक्त्व विना संजमकी शुद्ध क्रिया पालन कर जीव नवग्रैवेयक स्वर्ग तक गया परन्तु कुछ गरज नहीं सरी, मिथ्यात्वी ही रहा ।

॥ ढाल ॥

पाखंडियारी संगत करै, जिण लोपी जिनवर आण ॥ भ० ॥ समकित जाय शङ्का पड्यां, नन्दन मणियारा जिम जाण ॥ भ० दृढ० ॥ २० ॥

भावार्थ ।

समकित पाके दृढ़ता रखना अति दुर्लभ है वाहर क्रिया पालने वाले वेषधारी द्रव्य लिङ्गी मानूं इस समकित मयी रत्नके लूटेरे हैं. उन पाखंडियों की संगत से सम्यक्त्व रूप अमूल्य ऋद्धिका विनाश होता है पाखण्डियों की संगत करने की आज्ञा नहीं है, जो समदृष्टि पाखंडियों का संग परिचय करता है वह जिनेश्वर की आज्ञा को लोपते हैं उसका परिणाम खराव है जिन वचनों में शङ्का कँखा उत्पन्न होती है और समकित पाना दुर्लभ हो जाता है, जैसे नन्दन मणियार पाखंडियों की संगति करके समकित खोयकर तिर्यंच गति पाई उसका अधिकार श्रीज्ञाता सूत्र १३ मा अध्ययनमें विस्तार पूर्वक हैं, इसी अवसर्पणी के चतुर्थ कालमें मगधदेशान्तर्गत राजगृही नाम नगर था । वहां श्रेणिक नाम का महाप्रतापी और न्याय शील नरपति था उस नगर में एक धनाढ्य सेठ नन्दन मणिहार था एकदा उस राजगृही नगरीके निकट ईशान कूणमें गुणशील नामा वाग था वहां भगवन्त श्री महावीर स्वामी पधारे तब नगरीके बहुत लोग वन्दना नमस्कार करने व्याख्यान सुनने गये नन्दन सेठ भी गया

और यथा योग्य जगह देख बैठा भगवन्तकी वानी सुनने लगा भगवन्तने लोकालोकके भाव प्रकाशे संसार को अनित्य और असार कहा साधु श्रावक धर्म बताया तब नन्दन सेठ सुनके अत्यन्त हर्षित हुआ प्रतिबोध पाया और श्रीभगवानसे द्वादश विधि श्रावक धर्म अङ्गीकार किया वन्दना नमस्कार करके अपने घर आया प्रिय धर्मी और दृढ़ धर्मी हुआ सामायक पोषह प्रतिक्रमणादि श्रावक धर्म करता रहा भगवन्त विहार कर जन पद (देशों) में विचरे पीछेमें श्रावक नन्दनने पाखंडी हीनाचारियों की संगत से सम्यक्त्व के पर्यवों को हीनकर मिथ्यात्व के पर्यव बढ़ाये जिन वचनों में शङ्का कंखा उत्पन्न हुई एकदा जेष्ठ मासमें तीन उपवास कर पोषधशाला मे पोषध करता था रात्रीके समय धर्म जागरण करते करते अत्यन्त पाणी की पिपासा लगी तब विचारने लगा धन्य है उन पुरुषों को जिन्होंने कूचा वावड़ी तलाव कराये और कराते हैं वोही जीव मनुष्य जन्म सफल कर रहे हैं तो मैं भी प्रातःकाल सूर्योदय होने से पोषध पार कर राजा श्रेणिक के पास बहुमूल्य भेटणा लेकर जाऊं और राजा की इजातत ले नगर वाहर ईशान कूणमें विवाह गिर पर्वतके पास नन्दापुष्करणी बनाऊं ऐसा विचार कर सूर्योदय होने से पोषह पार बहुमूल्य भेटणा लेकर गया और राजा श्रेणिकसे जमीन की परवांनगी ले अपनी इच्छा माफिक बड़ाभारी बाग बनाया बागके मध्य भागमें नन्दा पुष्करणी बनाई और उसके चारों तर्फ विशाल मकानात बनाके बहुतलोगोंके आराम के लिये औषधालय १, भोजनालय २ मंजनस्नानालय ३, दान-शाला ४, बनवाके अनेकों को साता उपजाने लगे और अनेक वैद्य पुत्रों को उपस्थित किया लाखों रुपयोंका खर्च लोगोंके आरामकेलिये करता रहा बहुत लोग नन्दन की प्रशंसा करने लगे और कहने लगे मनुष्य जन्म सफल तो नन्दन सेठका है ऐसा सुनके नन्दन भी बहुत राजी होता रहा, एकदा समय नन्दन मणिहार के शरीरमें १६ प्रकारके रोग उत्पन्न हुए अत्यन्त वेदना से पीड़ित हुआ अनेक वैद्य आये

वहुत औषधियां करी किन्तु रोग न गया मरण समय काल कर अपनी वनाई हुई नन्दा पुष्करणी में मींडकपणे उत्पन्न हुआ मनुष्य जन्म खोके तिर्यंच गति पाई, वगीचे में लोग आवे तव नन्दनकी प्रशंसा करे कहैं मनुष्य जन्म सफल नन्दनने किया है ऐसा लोगोंके मुखसे सुनके मींडक सोचने लगा नन्दन कौन था ये क्या वात है ऐसा विचारने और ईहाया देनेसे मींडक को जाति स्मरण ज्ञान हुआ तव अपना पिछला भव देखा देख कर विचारने लगा अहो इति आश्चर्य कर्मगति विचित्र हैं मैं कौन था और अव कैसा हूं मैं था एक वडा-भारी प्रभाविक पुरुष और द्वादश व्रतधारी श्रावक लेकिन पाखण्डियों की संगति मे समकित और देशव्रत गमाकर अव मींडक हुआ हूं तो अव द्वादश व्रत अङ्गीकार कर तपस्या करके कर्म काट आत्म कल्याण करूं, ऐसा विचार के व्रत धारण कर तपस्या करने लगा वेले २ पारणाँ करने लगा अनेक कष्ट सहन कर कालक्षेप करता रहा, एकदा राजगृही नगरीके बाहर गुणशील नामा बागमें श्रमण भगवन्त श्रीमहा-वीर स्वामी पधारे पर्षदा वन्दने गई उस समय पुष्करणी के नजीक लोगोंसे भगवदागमन की खवर सुनके मींडक अत्यन्त खुश हुआ पुष्करणी से निकल भगवन्त को वन्दनें जाते रास्ते में राजाश्रेणिक के घोड़ेके पैरके नीचे आगया, जब जाने आनेको असमर्थ हुआ तव एकान्त होकर शुभ भावना भाने लगा भगवन्त को नमस्कार कर विचारने लगा हे प्रभो आप सर्वदर्शी हो, मुझे आपका शरण है और मुझे आपकी साक्षीसे यावत् जीवित पर्यंत च्यारों प्रकारके आहार भोगने का त्याग है, ऐसा कहके अपने पाप कर्मोंकी निन्दा करता हुआ च्यारगति चौरासी लक्ष जीवा योनिको खमाता हुआ काल समय मरण पाके प्रथम देवलोक में दर्दुर नामा विमान में ४ पल्यकी स्थिति में उत्पन्न हुआ, देव संबंधी आयुष्य और भवक्षय कर महा विदेह क्षेत्रमें धनाढ्य के घर जन्म ले वाल भाव निवृत्त कर दीक्षा अवसरसे दीक्षा ले तप कर केवल ज्ञान पाकर सकल कर्मक्षय

कर मुक्ति जावेगा, ये अधिकार विस्तार पूर्वक छट्टाअङ्ग श्रीज्ञाता सूत्रमें हैं।

अब न्यायाश्रयी और मोक्षाभिलाषी जीवोको विचार करना चाहिये नन्दन मणिहार को समकित कैसें गई? सूत्रमें खुलासा पाठ है पाखण्डी हीनाचारियों की संगति से सम्यक्त्व के पर्यायहीन हुए और मिथ्यात्वके पर्याय वढे, यदि संसारी जीवोंको साता उपजानें से जिनप्ररूपित धर्म होय तो समकिन कैसे जा सकती है और नन्दन तिर्यंचगतिका वन्धन क्यों करता "किन्तु नहीं नहीं कदापि नहीं" जिन आज्ञा वाहरका कर्तव्य से कदापि धर्म नहीं होना, आपस में खाना खिलाना साता उपजानादि कार्य संसारी व्यवहार हैं मोक्ष मार्ग नहीं है, श्री सुयगडांग के अध्ययन चौथा उद्देशा में कहा हैं सातादियां साता होय ऐसी प्ररूपणां वाला आर्य मार्ग से अलग; समाधि से विमुख. जिन धर्मकी निन्दा करण हार, थोड़े सुखके लिए वहुत सुखों का हारने वाला, असत्य पक्षी, अमोक्ष का कारण, और लोह वणिक की तरह वहुत पश्चात्ताप करेगा, तथा कहा है दान की प्रशसा करना प्राणीं जीवों का वध याने प्राण घात को वाछने वाला है और मनां करने से अन्तराय है. इस लिये शुद्ध साधू तो वर्तमान समय होना न कहें, और जैसा धर्म जिनेश्वर देवोंने कहा हैं उसीका उपदेश और आदेश दे ज्ञान दर्शन चारित्रादि जो मुक्ति मार्ग अध्ययन श्रीउत्तराध्ययन में कहा है वैसा ही कहै तथा जिनाज्ञा वाहर कदापि धर्म नहीं समझे उसही का नाम दृढ़ सम्यक्त्व है।

॥ ढाल ॥

काम देव चरणिक जिसा, श्रावक दृढ़ही वखान ॥भ॥ देव डिगाया नहीं डिग्या, निःशंक रह्या दृढजाण ॥ भ ॥ दृढ ॥ २१ हाडमज्जा रंगो जेहनो, रुचिया प्रवचन सार ॥ भ ॥ अरिहन्त वचन अंगी करै, धन्य

त्यांरो अवतार ॥ भ ॥ दृढ ॥ २२ ॥ ज्ञानदर्शन चारित्र तप बिना, धर्म न जाणू लिगार ॥ भ ॥ इम सांभल नर नारियां, मनमें कीज्यो विचार ॥ भ ॥ दृढ ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

कामदेव और अरणिक आदि दश श्रावक भगवन्न श्री महावीर स्वामी के प्रिय धर्मी औ दृढ धर्मी हुए हैं जिनका अधिकार श्री उपासक दशा सूत्र में है उनको अनेक कष्ट हुए हैं देवताओं ने परीक्षा निमित्त उपसर्ग दे के धर्म छुड़ाने के प्रयत्न किये हैं तथा किसी को स्त्रीने उपसर्ग दिया है परन्तु जो निःस्नेही दृढ धर्मी श्रावक थे वो धर्म से चले नहीं तथा मोह अनुकम्पा नहीं की जिनकी प्रशंसा स्वयं भगवानने की है, और जो बचाने के लिये खड़े हुए और देव गुरु समान माता को मारने वाले को पकड़ने लगे उनका पोषह भंग हुआ ऐसा उपासक दशा में कहा है, इसी लिये कहना है।

हे महानुभावों पक्षपात छोड कर विचारो स्वामी भीखनजी ने कैसा मुक्ति मार्ग कहा है जो जिनेश्वर देव ने कहा 'वही या और कोई दूसरा ? यदि वही कहा है तो हीनाचारियों के कहने से स्वामी के निन्दक मत बनो, अगर जो अपनी आत्मोन्नति करना चाहते हो तो एक बार स्वामी कृत ग्रन्थ ढाल स्तवन पढ़ो उनका भावार्थ समझो, पंच आस्रव द्वार और अठारह पापस्थानक सेने सेवाने और अनुमोदने में भगवंत ने एकान्त पाप ही कहा गया है हिन्सा करनेमें कदापि धर्म नहीं होता, जैसा अपने को कष्ट होय वैसा दूसरे जीवों को भी होता है चलते हिलते ही जीव नहीं हैं संसार में भगवत ने ६ प्रकारके जीव वताये हैं--पृथ्वी १ पाणी २ अग्नि ३ वायु ४ वनस्पति ५ त्रस ६ जिसमें पृथ्व्यादि पांचो कायों का विनाश कर सिर्फ त्रस जीवों को साता देने में धर्म कैसे हो सकता है यदि कोई कहे हमारे परिणाम तो साता

देने के हैं वो अच्छे ही हैं तो वह उनकी भूल है अज्ञान है.ज्ञानी पुरुष तो छहूं काया को मारने में एकान्त पाप कहा है जीव मारने से पुन्य बंध नहीं कहा है ऐसा ज्ञान होना चाहिये उक्तं च० "पढमंनाणं तवो दया" याने पहले ज्ञान और पीछे दया कही है, तात्पर्य यह है के पहले जीव अजीव पुन्य पापादि नवों पदार्थों का जानपना चाहिये, जैसा असंख्य प्रदेसी जीव त्रस में है वैसा ही स्थावर में है जैसे कोई मनुष्य किसी मनुष्य पर तलवार लेकर गला काटते समय विचार करै के मेरा परिणाम तो मारने का नहीं है सिर्फ तलवार की परीक्षा करने का है तो क्या उसको मनुष्य मारने का पाप नहीं लगेगा, वैसे ही कोई कहै हमारे परिणाम तो एकेन्द्री जीवोंको मारने का नहीं है सिर्फ त्रस जिवों को साता देनेका है, तो क्या ज्ञानी पुरुष उसे अच्छा समझ सकते हैं नहीं नहीं कदापि नहीं शास्त्र में तो कहा है "यह नाणीणंसारं जे ण हिन्सही किंचिह" ज्ञान पाने का सार तो यही है ज्यो किंचित मात्र भी किसी जीवों की हिन्सा न करै और न धर्म समझें, जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा है वोही कर्त्तव्य करने कराने और अनुमोदने में धर्म है बाकी सब संसारी व्यवहार है. धर्म पुन्य नहीं ऐसो ही प्ररूपन स्वामी भीखनजी ने की है ।

॥ ढाल स्वामी भीखनजी कृत ॥

॥ दोहा ॥ आज्ञा श्री अरिहन्तनीं, निर्वद्य दान में जाण ॥ सावद्य दानमें स्थापने मूरख मांड़ी ताण ॥ १ ॥ मिश्र धर्म प्ररूपनें, नहीं सूत्र नो न्याय ॥ लोकांने गेरै फन्द मे, कूड़ा जोज लगाय॥ २ ॥ अव्रत आस्रव म कह्यो, श्रीजिन मुख से आप ॥ सेयां सेवायां भलो जाणियां, तीनूं करणां पाप ॥ ३ ॥

व्रत धर्म श्रीजिनकह्यो, अव्रत अधर्म जाण ॥ मिश्र मूल दोमें नहीं, करै अज्ञानी ताण ॥ ४ ॥

भावार्थ ।

प्रिय पाठकों ज्ञान नेत्रों द्वारा देखो श्री अरिहन्त महाराज की आज्ञा निर्वद्य दान में है, सावद्य दानमें आज्ञा नहीं है, और जिहां श्री अरिहन्तों की आज्ञा है वहां ही धर्म है, लेकिन मूर्ख लोक लोकोंसे मिलती प्ररूपना करके सावद्य दान को स्थापते हैं याने सावद्य दान देने दिलाने में जिन प्ररूपित धर्म समझ रहे हैं कहते हैं जीवों की हिन्सा हुई तथा आज्ञा बाहर कार्य किया वो पाप है, और साता उपजाई वोह धर्म है, इस रीत से दोनूं मिलके मिश्र हुआ, इस तरह उपदेश देके भोले लोकों को फन्द में गेरते हैं अनेक दृष्टान्त देते हैं लेकिन यह नहो सोचते के दान लेने वाला अव्रती है या सर्व व्रती? यदि अव्रती है और उसे वा लिया हुआ दान भोग नें से अव्रत पुष्ट होगी या व्रत अगर अव्रत सेना है तो अव्रत सेवाने वाले को धर्म कैसे होगा, श्री जिनराज ने तो अव्रत आस्रव कहा है, अव्रत द्वारा पापका बन्ध कहा है, अव्रत सेयां सेवायां भलो जाणियां एकान्त पाप है, तीर्थंकरों ने व्रत धर्म कहा है और अव्रत को अधर्म कहा है, किन्तु व्रत अव्रत दोनूं मिलके मिश्र नहीं कहा है, जिस को व्रत अव्रत का ज्ञान नही है वो मूर्ख लोक-पक्ष में पड़के व्यर्थ ताण याने जिद्द करते हैं, देखो भगवान ने अठारह पाप कहा है सो किञ्चित सेने सेवाने से और भला जाणने में धर्म नहीं हैं।

॥ ढाल ॥

जिन भाख्या पाप अठार, सेयां नहीं धर्म लिगार, शंकामत आणज्यो ए ॥ सांचो करि जाणज्यो ए ॥ १ ॥ जो थोड़ो घणों करै पाप, तिणथी होय

सन्ताप, मिश्र नहीं जिन कह्यो ए ॥ समदृष्टि सरधियो ए ॥ २ ॥ केई कहै अज्ञानी एम, श्रावक पोषां नही किम, भाजन रतनां तणों ए ॥ नफो अति घणों ए ॥ ३ ॥ तिणरो नही जाणै न्याय, त्यानें किम आंणों-जे ठाय. वैधो घालियो ए झगड़ो झालियो ए ॥ ४ ॥ हिव सुणज्यो चतुर सुजाण, श्रावक रतनां री खाण, व्रतां करि जाणज्यो ए ॥ उलटी मत ताणज्यो ए ॥ ५ ॥

भावार्थ।

प्राणातिपात १ (जीवहिन्सा) मृषावाद २ (झूंठ बोलना) अदत्ता दान ३ (चोरी करना) मैथुन ४ (कुशील सेना) परिग्रह ५ (द्रव्य रखना) क्रोध ६ (क्रोध करना) मान ७ (अभिमान, दर्प करना) माया ८ (कपटाई करना, धूर्त्तता) लोभ ६ (धनकी लालसा इच्छा, राग १० स्नेह करना) द्वेष ११ (परायेका बुरा चिन्तना) कलह १२ (लड़ना, झगड़ना) अभ्याख्यान १३ (झूंठ वार्ता कहना) पिसुन १४ (चुगली करना) पर परिवाद १५ (पराये की निन्दा करना) रति अरति १६ (मनसा माफक वस्तु पै खुश होना और अनिच्छित वस्तु पै नाराज होना) माया मृषावाद १७ (कपट सहित झूंठ बोलना) मिथ्या दर्शन शल्य १८ (मिथ्या सरधना) यह अठारह पाप कहे हैं जिने सेवने से किञ्चित् मात्र धर्म नहीं है यह सत्य जानना चाहिये इसमें जरा भी शंका नही रखना इन अठारों पापों में से थोड़ा या बहुत पाप करे वो संताप दायक है यदि थोड़ा करै थोड़ा दुःख दायक है और बहुत करै बहुत दुःख दायक है, किन्तु यह नहीं हो सकता के बहोत करे वो पाप, और थोड़ा करे वो धर्म, जिनेश्वर ने यह नही कहा अगर थोडा पाप करने से

ज्यादा धर्म हो तो थोड़ा पाप कर लेना चाहिये या पाप और धर्म दोनूं मिलकर मिश्र होता है कदापि मिश्र नहीं एसा शरधना सम्यक दृष्टिके लक्षण है, कई अज्ञानी कहते हैं श्रावक को च्यारूं आहारों से पोषना चाहिये क्योंकि श्रावक व्रतमयी रत्नों की खान है, याने भाजन है उसे खिलाने से बहोत नफा है, श्रावक भोजन करके व्रत पच्चखान करेगा तो जिमाने वालेको भी उसका हिस्सा आवेगा इसलिये श्रावक को खिलाना धर्म है ऐसी कहते हैं, किन्तु यह नहीं विचारते श्रावक आहार किया सो व्रत या अव्रत है यदि अव्रत ऐसा है तो सेवाने वालों को धर्म कैसे होगा, वोह व्रत सेता है सो रत्न है या अव्रत सेता है सो रत्न है। उस के पास व्रत मयी रतन है या अव्रत मयी ऐसा विचारना आवश्यक है अब दृष्टान्त कहते हैं।

॥ ढाल ॥

कोई रूंख बागमें होय, आम्ब धत्तूरो होय, फल नहीं सारखा ए॥ कीज्यो पारखा ए ॥ ६ ॥ आम्बा सूं लिव ल्याय, सींचे धत्तूरो आय, आशा मन अति घणीं ए॥ आम्ब लेवण तणीं ए ॥ ७ ॥ आम्ब गयो कुमलाय, धत्तूरो रह्यो दिढ़ाय, आवी नें जोवे जरें ए॥ नयणां नीर झरे ए ॥ ८ ॥ इण द्रष्टान्ते जाण, श्रावक व्रत अम्ब समान, अव्रत अलगी रही ए॥ धत्तूरा सम वाही ए ॥ ६ ॥ सेवावे अव्रत कोय, व्रतां रहामीं जोय, ते भूला भरम में ए॥ हिन्सा धर्म में ए ॥ १० ॥ अव्रत से बंधे

कर्म, तिणमें नही निश्चै धर्म, तीनूं करण सारखा ए॥ विरला पारखी ए॥ ११॥ खार्धा बन्धे कर्म, खुवायां मिश्र धर्म, ए झूंठ चलावियो ए॥ मूरख मन भावियो ए॥ १२॥ मिश्र नहीं साख्यात, ते किम अरधोजे वात, अकल नहीं मूढ में ए॥ पड़िया रूढ में ए॥ १३॥ पोते नही बुद्धि प्रकाश, वलि लाग्यो कुगुरां रे पाश, निर्णय नहीं करै ए॥ ते भव सागर परै ए॥ १४॥

भावार्थ।

जेसे किसी वागमे आम्र और धत्तूरे दोनूं तरह के दरखत हैं किन्तु उनके फल एकसा नहीं हैं, कोई मूर्ख मानव धत्तूरे को आम्र का दरखत समझ कर पानी देने लगा, और आशा करने लगा ऋतु समय मुझे यह वृक्ष वहोत मिष्ट आम्र देगा ऐसा खयाल से हमेशा धत्तूरे को पानी आम्र का वृक्ष समझ कर देता रहा तब आम्र वृक्ष सूख गया और धत्तूरा प्रफुल्लित हो गया, कितनेक समय बाद धत्तूरा के समीप आके आम्र देखने लगा तो एक भी नही मिला तो अत्यन्त दुःखित होके रोने लगा, इस दृष्टान्त करके बुद्धिमानो को समझना चाहिये आम्र समान व्रत और धत्तूरा समान अव्रत है, तब व्रतकी आशा से अव्रत सेने सेवाने से व्रत मयी आम्र फल कैसे होगा अव्रत सेवाने से तो अव्रत रूप धत्तूरा फल की प्राप्ती होगी, अव्रत सेने सेवाने में तो अशुभ कर्मका ही वन्ध होगा, श्रावक के त्याग है वो व्रत हैं, जिस सावद्य कार्यं का त्याग नही हो वो अव्रत है परं दोनूं मिलके मिश्र ऐसा नही हो सकता अव्रतका सेना वो प्रथम करण, सेवाना वो दूसरा करण, सेते हुए को अच्छा समझना ए तीसरा करण है, जिस कर्त्तव्य से पापकर्म प्रथम करण से लगता

है तो द्वितीय और तृतीय करणसे धर्म ए कैसे हो सकता है खाने वालों को पाप, और खिलाने वालो को धर्म, ऐसी मिथ्या प्ररूपणों वाला मूर्ख और अजान लोगों को अच्छे लग रहे हैं. उन निर्बुद्धियों को स्वयं तो बुद्धिमयी प्रकाश नहीं, और कुगुरुवों के मिथ्या शरधा मयी जालमें फँसके भव भ्रमण रूप कूआ याने कूपमें पड़ रहे हैं।

॥ ढाल ॥

साधू संगति पाय, सुणो एक चित्त लगाय, पक्षपात परिहरे ए, ज्यों खबर वेगी परे ए ॥ १५ ॥ आनन्द आदिदेजाण, श्रावक दशूं वखाण ते पड़िमा आदरी ए, चरचा पाधरी ए ॥ १६ ॥ जे जे क्रिया के त्याग, आणीमन वैराग, तेकरणी निरमली ए, करीने पूररली ए ॥ १७ ॥ बाकी रह्यो आगार, अव्रत में आख्यो आहार, अपणी जाति में ए, समझो इण वातमें ए ॥ १८ ॥ अव्रत में दे दातार, ते किम उतरै भवपार, मार्ग नहीं सोखरो ए, छान्दो इण लोकारो ए ॥ १९ ॥ दाता अन्न शुद्ध थाय, पात्र अव्रत में त्याय, ते किम तारसी ए, किम पार उतारसी ए ॥२०॥ उपासक उवाई अङ्ग, वलि सुयगड़ाङ्ग, सूत्र थी उद्धरी ए, अव्रत अलगी करी ए ॥ २१ ॥ जूनों गूढ मिथ्यात त्यांरै किम वेसे ए वात, कर्म घणा सही ए, समझ पड़ै नहीं ए ॥ २२ ॥

भावार्थ ।

इसी लिये कहना है निर्लोभी निग्रंथ साधुवोकी संगति पाके दान का अधिकार पक्षपात को छोड़ कर सुनिये तब सुपात्र और कुपात्र दानका फल मालूम हो जायगा, देखो आनन्दादि दश श्रावक प्रतिमा याने प्रतिज्ञा करी वो धर्म है और जो आगार रह्यो वो अधर्म है, साधूवत गौचरी करके आहार पानी अपनी जाति में से लाके भोगते थे वा अव्रत में हैं, वैराग्य भावसे जो त्याग करते थे वो व्रत संवर था, तो दातार उन्हे अव्रत सेवाता था या व्रत ? यदि अव्रत सेवाता था तो अव्रत सेवाने मे धर्म कैसे होवेगा, और वो कार्य उन्हें संसार मयी समुद्र से पार कैसे उतार सकता है, उपासगदसा उवाई सूत्र और सुयगडा अङ्गमे व्रत अव्रत का निर्णय खुलासा कहा है लेकिन दीर्घ कर्मी जीव तब भी समझने नही हैं ।

॥ ढाल ॥

आगम नी दे साख, श्री वीर गया छै भाख, भवियण निर्णय करै ए, भव सायर तिरै ए ॥ २३ ॥ देई सुपात्र दान, न करै मन अभिमान, ते संसार प्रति करै ए, शिवरमणी वरै ए ॥ २४ ॥ दानसूं तिरिया अनन्त, ते भाख गया भगवन्त, ते दान न जाणियो ए, न्याय न छाणियो ए ॥ २५ ॥ साधु सुपात्र सोय, दाता सूझतो होय, असणादिक शुद्ध दियो ए, ते लाभ मोटो लियो ए ॥ २६ ॥ साधु सुपात्र सोय, दाता सूझतो होय, असणादिक शुद्ध नहीं ए, वैरागया नफो नहीं ए ॥ २७ ॥ कोई मिले मोटा अणगार,

दाता अशुद्ध बिचार, असणादिक शुद्ध सही ए, बैरायां नफो नहीं ए ॥ २८ ॥ मिलै कुपात्र कोय, दाता अन्न शुद्ध होय, पड़िलाभ्यां तिरे नहीं ए, सूत्रमें इम कहीये ॥ २९ ॥ आयूं मन विवेक, तीनामें शुद्ध नहीं एक, प्रतिलाभ्यां में धर्म नही ए, श्रीजिन मुखसे कही ए ॥ ३० ॥ दाता अन्न पात्र बिचार, तीनूं अशुद्ध निहार, तो धर्म न भाषे जती ए, झूंठ जाणो मती ए ॥३१॥ इति ॥

भावार्थ ।

जिन भाषितागम याने शास्त्रों में जगह जगह श्रीवीरप्रभुने कहा है सुपात्रों को निरदूषण दान देना यही शिव मार्ग है, वाकी लौकिक दान देना मुक्ति मार्ग नहीं है, लज्यादान भयदान, वगैरह दश प्रकारके दानका अधिकार श्रीठाणांग सूत्रमें है, जिसमें अभय दान और धर्म दान यह दोनूं ही संसार समुद्र से तिरणे का उपाय है इन्होंका निर्णय भव्य जीवों को करणा चाहिये, एकेन्द्री को भय और पंचेन्द्री का पोषण करने में कदापि धर्म नही हो सकता खटकायों की विराधना करे वो सुपात्र नहीं है, जीव हिन्सा करे झूंठ बोलै चोरी करै मैथुन सेवै और परिग्रह रक्खे वो तो कुपात्र ही हैं, सुपात्र तो वही है, जो एकेन्द्री आदि सब जीवों को न मारै, झूंठ न बोलै, चोरी न करै मैथुन न सेवै, परिग्रह न रक्खे, ऐसे सुपात्र को ही उचित और निर्दोष दान देने में धर्म है, जैन शास्त्रोमें ऐसा ही अधिकार है ऐसे दान से ही धर्म है, सुपात्र दान देके अभिमान न करै तव ही प्रति संसार होता है, श्रीविपाक सूत्र में सुवाहु कुमार आदि दश जणोंने शुद्ध साधू निग्रंथ निरलोभी महात्माओं को दान देके प्रति संसार किया है और महा पुन्योपार्जन किया है, यही क्यो सुपात्र दानसे अनन्त जीव

संसार समुद्र से तिरे हैं, पात्र शुद्ध साधू मुनिराज, दातार शुद्ध निर्दूषण देनेवाला, और वित्त शुद्ध अशणादि च्यारूं आहार, साधू के निमित्त न किया हुवा तथा सच्चित्तादिक से अलग, इन तीनोंका योग मिलने से लाभ होता है, इन तीनूं मे से अगर एक भी अशुद्ध है तो कुछ फायदा नही होना न्यायाश्रयी को ज्ञान दृष्टि से देखना परमावश्यक है, जो समदृष्टि जिन आज्ञा बाहर धर्म नहीं समझते वो कभी जिन आज्ञा बाहर के दान मे कदापि धम नहीं समझ सकते।

महानुभावों! क्रोधादि च्यारूं कषायों का अनुदय समय पक्षपात रहित होके खयाल करो हिन्सादि पंच आस्रव द्वार सेने सेवाने और अच्छा समझ ने में जिन प्रणीत धर्मका तो लेश मात्रभी नहीं है, हीनाचारी और निन्दकों के कहने से शुद्ध संयम पालनेवाले संयतियों की निन्दा मत करो, सब जीवों से मैत्री भाव रखना ही परम धर्म है क्रोध करना, लड़ना, झगड़ना, असत्य आल देना और धर्मात्माओं से ईर्षा आदि कार्यों से तो महापाप कर्म का बन्ध होता है. क्षमा शील संतोषादि ही करना धर्म कार्य है, अपने से व्रत न पले और पालने वालों से द्वेष रखे भगवत ने श्रीआचारांग सूत्र में द्विगुणां मूर्ख कहा है, इसलिये नम्रता पूर्वक ऊपर कहा और कहते हैं अगर तुम्हे इस संसार समुद्र से तैरना हैं जो अनादि कालसे जीव अष्ट कर्म वर्गणा से लिप्त है उनसे अलग होके स्वसत्ता प्रगट करनी है तो ईर्षा और द्वेष को छोड़ कर एकवार स्वामी भीखनजी कृत ग्रन्थ पढ़ो, जिस वीर प्रभु को भगवन्त सर्वज्ञ मान रहे हो और उनके वचनों की पूर्ण आस्था है तो उन के वचन जो अङ्ग उपाङ्ग सूत्र है वो शुद्ध साधुवों के पास सुनो, टीका कारों ने या चूर्णा कारों ने टवा करने वालों ने जो अर्थ सूत्रसे मिलते किये हैं उन्हे सत्य समझो परन्तु किसी जगह सूत्र विपरीतार्थ किया है उन ही अर्थ को सत्य समझकर हीणाचारकी पुष्टी मत करो, जैन मजहब का सारान्श जिन आज्ञा

धर्म है, जिहां जिन आज्ञा नही वहां निश्चय अधर्म है उस कर्त्तव्य से एकान्त पाप कर्म का ही बन्ध है, सूत्रो मे जगह जगह दोय धर्म कहे हैं श्रमण धर्म और श्रमणोपासक धर्म, श्रमण धर्म तो पंच महाव्रत मयो, श्रमणो पासक धर्म द्वादश व्रतमयी किन्तु ऐसा कहीं भी नहीं कहा के श्रमग धर्म तो पंचमहाव्रत मयी है और श्रमणो पासक धर्म व्रत अव्रत मयो है, जैसा श्रमणोपासक धर्म द्वादश व्रत रूप जिनेश्वर ने कहा है वैसा ही श्रमणोपासक धर्म श्री भिक्षु स्वामी ने कहा इसलिये कहना है यथा शक्ति द्वादशव्रतों को आराधना निर्दूषणपणें करो, और श्रमण धर्म की आराधना करने की इच्छा रक्खो तब श्रावक कहलावोगे केवल नाम मात्र श्रावक कहलाणे से और हिंसा में धर्म समझने से श्रावक पद जो पंचम गुणस्थान हैं उसकी प्राप्ती कभी नहीं होगी।

आपका हितेच्छु और गुणवानोका दास।

श्रावक जौहरी गुलाबचन्द लूणियां
जयपुर

॥ अथ द्वादशविध श्रावक धर्मः ॥

स्वामी श्रीभीखनजी कृत

द्वादश व्रतों को ढालें ।

॥ दोहा ॥

पांच अणुव्रत परिवखा, तीन गुणव्रत सार ॥
शिखा व्रत च्यारौं चतुर, तेहनूं करो विचार ॥ १ ॥
पहिला में हिन्सातजै, दूजै झूठ परिहार ॥ तीजै

अदत्त चौथे मिथुन, पंचमें तजै धन सार ॥ २ ॥
पहिलो गुण व्रत दिशितणूं, दूजै भोग पचखाण,
तीजै अनरथ परिहरै ॥ ए तीन गुण व्रत जाण ॥३॥
सामायक पहिलो सिखा, दूजो संवर जाण ॥ तीजो
पोषध कहिजिये, चौथो साधुने दान ॥ ४ ॥ यां
बारह वरतांतणो, कहियै छै विस्तार ॥ भाव धरी
भवियण सुणो, मन में, आंण बिचार ॥ ५ ॥

भावार्थ।

श्रावक के बारह व्रत है, जिनमें पांच अणुव्रत, तीन गुण व्रत, च्यार शिक्षा व्रत हैं, यह पांच अणुव्रत याने सूक्ष्म व्रत है जिस जिस भांगे से त्याग करे वो आगार सहित है, इसलिये अणुव्रत, तात्पर्य देशत: श्रावक के, और साधू के सर्वत: याने आगार रहित है इससे पंच महाव्रत कहे हैं, मन वचन काया के तीनयोग और करणां कराणां और अनुमोदना ए तीन करण है, इनके परस्पर भांगे बनाने से ४६ भांगे होते हैं, जिसमें जैसे जैसे भांगे त्याग करै वह देशव्रत है आगार रक्खे वह अव्रत हैं, इसमें अणुक्त कहतां छोटे व्रत हैं, वोह पांच प्रकार के हैं अहिंसा १, अमित्थ्या २, अदत्त ग्रहणनिवर्तन ३, ब्रह्मचर्य ४, अपरिग्रह ५, यह पांच अणुव्रत कहे हैं,,।

दिशिमर्यादा १, भोग उपभोग परिहार २, अनर्थदण्ड निवृत्ती ३, ए तीनूं पंच अणुव्रतों को गुणदायक है इसी व्रत्त कहे है।

सामायक १, कालमर्यादा सहित पंचास्रवत्याग सो संवर हैं २, पोषध अहोरात्रिप्रमाण पंच.स्रवकेत्याग ३, और चौथा अतिथि संविभागव्रत ४ वो शुद्धसाधू निग्रंथको शुद्धदान १४ प्रकार का देनेसे होता है।

यह च्यार शिक्षाव्रत है सर्व मिलके १२ द्वादशव्रत हैं इनका विस्तार पूर्वक वर्णन बुद्धिवानजन विचारैं।

॥ ढाल ॥

जिन भाष्या पाप अठार ॥ एचाल में ॥ श्रावक नां व्रत बार, पालै निर अतीचार, तेह दुरगति नहीं पड़ै ए, भवसायर तरै ए ॥ १ ॥

भावार्थ ।

उपरोक्त यह जो श्रावक के द्वादश व्रत हैं उनको अतीचार रहित पालने वाला जीव दुर्गति में नहीं जाता और सायर अर्थात् संसार रूप समुद्र से तिरता है ।

॥ ढाल ॥

पहिलो व्रत इम जाण, तिणमें हिंसा ना पच-खाण, हिंसा त्रस तणी ए, बीजी थावर भणी ए ॥ २ ॥

भावार्थ ।

सद्गुरू कहते हैं समदृष्टि जीवो! श्रावक का प्रथम व्रत यह है के हिन्सा करने का त्याग करै । वोह हिन्सा दोय प्रकार की है एक तो त्रस हिंसा, दूसरी स्थावर हिंसा, त्रस हिंसा च्यार प्रकार की हैं बेंद्री की १, तेइंद्री २, चउ इंद्री ३, पंचेंद्री ४, जीवोंकों त्रिकरण, और तीन जोग से नाश करणा, और स्थावर हिंसा पांच प्रकार की पृथ्वी १ पाणी २ वायु ३ अग्नि ४ और वनस्पती ५ यह पांच प्रकार के जीवोंको त्रिकरण और ३ योग से प्राणनाश करणा, उपरोक्त दोनू प्रकारकी हिंसाका जितनां जितनां त्याग करै वो प्रथम श्रावक व्रत है तब गृहस्थ बोला :—

॥ ढाल ॥

वसतां गृहस्थावास, हिंसा हुवै तास, आरम्भ बिन करेए, पेट किम भरै ए ॥ ३ ॥

भावार्थ ।

मैं गृहस्थाश्रम मे रहता हूं हिन्सा हो रही है आरंभ विना उदर-पूरना किस तरह होय इसलिये—

॥ ढाल ॥

करूं त्रसतणा पचखाण, स्थावरनों परिमाण भेद त्रसतणाए, ज्ञानी कह्या घणा ए ॥ ४ ॥

भावार्थ ।

त्रसजीवों को मारने का त्याग और स्थावर के प्रमाण उपरान्तका मारणेका त्याग करूं किन्तु हे गुरु त्रस हिंसा के भी अनेक भेद ज्ञानी देवोंने कहे हैं एक अपराधीकी, दूसरी निर अपराधी की।

॥ ढाल ॥

कोई सूंनें घालै घात, म्हारो अपराधी साचात, खमतां दोहिलोए, नहिं सूंनै सोहिलो ए ॥ ५ ॥
सांतो दें मे लेजाय, अथवा लूटै आय, खूंन करै जरां ए, सूंस नहिं तरांए ॥ ६ ॥

भावार्थ ।

सर्वथा प्रकार त्रस हिंसाका भी मुझ से त्याग होना मुश्किल है क्योंके कोई जीव मुझको मारनेको आया व मेरा अपराध किया वो मेरे से नही खमा जाता, क्षमना भी सहज नही है, अथवा मेरे पास द्रव्य है उसको कोई चोर मकान फोड़कर ले जाना चाहै या लूटना चाहै वा खून करे तो उसे मारने का मेरे त्याग नहीं कारण ऐसी दृढ़ता नही।

॥ ढाल ॥

बिन अपराधी होय, तिणरी हिन्सा दोय, मारै जाणतां ए, वले अजाणतां ए ॥ ७ ॥

भावार्थ ।

निर अपराधी जीवकी हिन्सा भी दोय प्रकार को है एक तो जाण के दूसरी अणजाणते यदि अजाणके आगार रखके जाणते त्रस हिन्सा का योग करूं तोभी निर्वाह होना कठिन है।

॥ ढाल ॥

म्हारै धान जोखणरो काम, गाड़ी चढ़ जावूं गाम, खेती हल खड़ूं ए, शूड़ निनाण करूं ए ॥८॥ तिहां बहु जीव हणाय, किम पालूं मुनिराय, नहीं सभै इसो ए, गृहवासैं बस्यो ए ॥ ९ ॥ श्राकूटीने स्वाम, जीवमारणरो काम, व्रतके जाणतां ए, नहीं अजाणतां ए ॥ १० ॥

मेरे धान कहता अनाज जोखण याने वजन करनें का काम भी है उसमें ईली घुण आदि बहुत त्रस जीवोंकी हिन्सा है अथवा गाड़ी प्रमुख सवारी में बैठके देशान्तर व ग्रामान्तर जाना होता है तब भी त्रसहिंसा बहुतसी होती हैं. और खेती के वखत हल चलाते वा सूड निनांणी अर्थात् धान्य सिवाय इतरघास प्रमुख को खोदने में कीड़ादि त्रस जीवोंकी हिन्साके होने का ठिकाना है इस वास्ते अजाण हिंसाका भी त्याग होना कठिन है क्योंके गृहवास में बसता हूं, चलाके मारने की इच्छा से भी अर्थात् निरअपराधी त्रस जीवोंके मारनेका त्याग करता हूं वो भी अजाण के नहीं है क्योंके ।

॥ ढाल ॥

म्हारे दूसड़ी ईर्या नाहि, चालूं अन्धारा मांहि
वस्तु ओऊं पूजूं नहीं ए, लेऊं मूकूं सही ए ॥११॥

भावार्थ ।

मैं ऐसा ईर्यासुमतिवान् नहीं हूं के अंधेरे में चलूं जिस समय देख देखके चलूं अथवा पूञ्ज पूञ्ज के वस्तुमात्र को मेलू उठाऊं तथा देते लेत वख्त वस्तु जिसको प्रति लेखना करूं ।

॥ ढाल ॥

थाप लाठीरा नेम, मोसूं चाले केम, चउपद
हांकणा ए दो पद हटकणा ए ॥ १२ ॥ छूमकरतां
जीव मराय, जीव काया जुदा थाय, हणवा वुद्धि
नहिकरी ए, विणवुद्धे मरी ए ॥ १३ ॥

भावार्थ ।

थाप कहिये चांटा और लाठी यानें लकड़ी डंडा प्रमुखसे त्रसजीव को न मारणेका व्रत भी मुझ से नहीं निभ सकता कारण चतुष्पद ज्यांनवरो को हांकना वा द्विपद दास दासी प्रमुख पुत्र पौत्रादि कुटुम्बको शिक्षा का काम पड़े तो मारणे पीटने में हिंसा कदाचि हो जाय इसलिये नहीं निभ सकता तो अव ।

॥ ढाल ॥

हणवा वुद्धे होय, जीव न मारूं कोय, सउपयोग
करीए, ऐसो विगत धरीए ॥१४॥ हिंसानां पचखाण,
मैं कीधा परिमाण, जावज्जीव करीए, करण जोग
धरीए ॥ १५ ॥

भावार्थ ।

मारने की बुद्धि करके निरअपराधि त्रसजीवको उपयोग सहित मारने का त्याग जावज्जीव पर्यन्त करता हूं वो तीन करण तीन जोग से ४६ भाग होते हैं जिस में जैसे २ भांगे से त्याग किया वो प्रथम अणुव्रत है, और जिस जिस भांगेका त्याग नहीं किया वहअव्रतास्त्रव है,

॥ ढाल ॥

धन्य जे ले वैराग, ज्यारे सर्व हिन्सारा त्याग, त्रस थावरतणीए, अनुकम्पा घणीए ॥ १६ ॥ हूं गृहस्थ मुनिराज, म्हांरे आरम्भसुं काज, अव्रत बहु घणीए त्रसथावरतणीए ॥ १७ ॥ धनधन साधु मुनिराय ते सुमति सुमतें थाय, जीवे जिहां भणीए, नहीं चूकै अणीए ॥ १८ ॥

भावार्थ ।

धन्य है उन पुरुषों को जिनके ३ करण ३ जोग से हिंसा करने का त्याग है, त्रस और थावर जीवों की दया हैं, किसी जीव मात्र की विराधना नहीं करते हैं, उन महा ऋषियों का जन्म सफल है, हे मुनिराज मैं गृस्थाश्रम में बसता हूं मेरे आरम्भ करने का काम पड़ता ही रहता है चलते फिरते बैठते उठते सोते खाते पीते इत्यादि कार्यों मे हिन्सा होने का ठिकाना है और त्रस थावरों के हिन्सा की अव्रत बहुत है, सर्व विरती तो साधू मुनिराज ही हैं वो पांच सुमति तीन गुप्ति पञ्च महाव्रत पाले हैं जावज्जीव पर्यंत शिव साधन से कुशाग्रमात्र भी नहीं चूकते, उन पुरुषों को धन्य है ।

॥ ढाल ॥

धृग धृग गृहस्थावास, म्हारे मोटो पड़ियो पाश

हिन्सा होवैं घणीए, तेह नही हित मो भणीए, ॥ १९ ॥ ज्ञानादि अंकुश ल्याय, मननें आणी ठाय। हिंशा टालस्यूंए, दया पालस्यूंए ॥ २० ॥ धन धन साधूशूर, ज्यां लफंरा कीधा दूर। इस विध मो प्रते ए, खातो नहीं खतैए ॥ २१ ॥

॥ इति प्रथम व्रत ढाल ॥

॥ भावार्थ ॥

धृक्कार है गृहावास को और मेरे को जो मैं ऐसे अनित्य गृहस्थाश्रम में वस रहा हूं और स्वार्थ के सगे स्वकुटुम्बियों को त्रस थावर जीवों की हिंसा मयी पाश में पड़िके पोप रहा हूं, यह कर्त्तव्य मुझे हितकारी नहीं है किन्तु दुःखदायी ही है, परन्तु ज्ञानादिक अंकुस से मनोमय हाथी को अपने ठिकाने पर लाऊंगा और जिस दिन मेरे सर्वथा प्रकारे हिंसा का त्याग होगा वही दिन मेरे परम लाभदायक होगा, अभी तो सिर्फ स्थावर और त्रस जीवों की हिन्सा का त्याग मर्यादा उपरान्त किया है वह मेरा देशव्रत है, आगार रक्खा है वह व्रत नहीं अव्रतास्रव है, पर जहां तक वने जहां तक हिंसा टालके दया पालूंगा. धन्य है उन साधू महात्मा शूरवीर पुरुषों को' जो मोहमयी प्रवृत्ति पाशको तोड कर धर्म मार्ग में चल रहे हैं, इस प्रकार का हिसाव खाता मुझसे नहीं होता।

अथ दूजोव्रत

दोहा

दूजो व्रत श्रावक तणो, करै झूठ परिमाण, त्यागै माठो जाणने, पालै जिनवर आण ॥ १ ॥ झूठा बोला मानवी नहीं ज्यांरी परितीत, मनुष जमारो हारनै, नरकां होय फजीत ॥ २ ॥

॥ भावार्थ ॥

झूठ याने असत्य बोलने का प्रमाण उपरांत त्याग करे वो श्रावक का दूसरा व्रत है, और आगार रक्खै बोले बोलावै बोलते को भला जाणै वह अव्रताश्रव है उमसे पाप कर्म का बंध होता है इसलिये असत्य भाषण को महा खराब और नीच कर्म समझ कर त्याग करे जिनेश्वर की आज्ञा प्रमाण सत्य वचन बोले, झूठ बोलने वाले मनुष्य कदाचित् सत्य भी कहै तोभी उनका वाक्य की प्रतीति नहीं होती ऐसे जीव वृथा मनुष्य जन्म खोते हैं और नरकों के दुःख सहन करते हैं, हे भव्यजनों इसीलिये सद्गुरु कहते हैं।

॥ ढाल ॥

जिन भाख्या पाप अठार एदेशी

झूठ तणा पचखाण, नाना मोटा जाण।
पचखै मोटकाए, कांइ एक छोटकाए ॥ १ ॥

॥ भावार्थ ॥

झूठ दोय प्रकार की है एक तो छोटी, याने किञ्चित् दूसरी मोटी अर्थात् जिसके बोलने से राजदंड करे और लोगों में निन्दा हो ए द्विविध झूठ बोलने का त्याग करो।

॥ ढाल ॥

छोटो न बोलूं केम, म्हारे गृहवासे सूं प्रेम,
विणज सौदा करूं ए, मनमें लोभ धरूं ए ॥ २ ॥

॥ भावार्थ ॥

गृहस्थ कहता है हे महाराज आपने कहा वो तो ठीक है लेकिन मैं गृस्थाश्रम में हूं छोटे झूठ के त्याग नही निभ सकते वाणिज्यादिक में झूठ कहना ही पड़ता है कारण इसका लोभ है, लोभ के वास्ते झूंठ बोलना पड़ना है।

॥ ढाल ॥

मोटा पांच प्रकार, तेहनूं करूं परिहार, व्रत
करूं ऐमोए, मोसूं निभे जसोए ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

मोटी झूट पांच प्रकार की है उसका त्याग कर सकता हूं जैसा मुझसे निभे वैसा व्रत करना उचित है।

॥ ढाल ॥

किन्नाली ग्वाली जाण, तीजी भूमि पिछाण थापण
मोसो करीए, कूड़ी साख भरीए।

॥ भावार्थ ॥

मोटो झूठ पांच प्रकार की है किन्नाली अर्थात् कन्या के वास्ते १ ग्वाली याने गाय भैंस प्रमुख दूधवाले जानवरों के कारण २ तीसरी भूमि कहिए जमीन मकानात वगैरह के वास्ते ३ थापणमोसा याने किसी की अमानत चीज हजम करणा ४ कूड़ीसाक्षी वो है के मिथ्या गवाही देना ५।

॥ ढाल ॥

कन्यारा भेद अपार, करणो सूंम विचार, बरसां छोटकीए तेहने कहिसे मोटकीए ॥ ५ ॥ गहली गूंगी होय, वले आंख नहिं होय, काणी मीमणीए, आंख्यां चीपणीए ॥ ६ ॥ काली कोडाली नारि, कांना न सुणै लिगार, टूंटी पांगलीए, बोलै तोतलीए ॥ ७ ॥ रोग घणू घटमांय, जीवारी आशा नहिं काय, बोलां ज्वरो तेजरोए, आवै एकान्तरोए ॥ ८ ॥ वलै रोग छै खेन, जीव न पामें चैन, रक्त पित्त तणीए, दुरगन्ध अति घणी ए ॥ ६ ॥ कूंबी डूंबी होय, वाटी बांकी जोय, छोटी बांफणीए, आंख्यां भांमणीए ॥ १० ॥ हीणा वंशरी होय, तिणरी जात न जाणै कोय, आतो जाणै जठेए; साख न भरै कठेए ॥ ११ ॥ रूपरोग ने खोड, वले बरसदे तोड़, अछतो नहीं भाखणोए, हुवै जिम दाखणोए ॥ १२ ॥ यां बोलांरो स्वाम आय पड़ै कोई काम, घर मंडे जठेए, झूठ न बोलूं तठेए ॥ १३ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांच प्रकार के झूठ ऊपर कहे हैं उनमें पहला (कन्यालीक) सो कन्या के वास्ते मिथ्या बोलना वह अनेक प्रकार के हैं इसलिये जो सोगन करैं वह बिचार के करने से नियम का भंग नहीं होता, अनेक भेदों में से संक्षेप कहते हैं, जैसे छोटी ऊमर वाली को ज्यादह ऊमर को कहना, अथवा गहली हो, गूंगी, आंधी, कांणी मांजरी, आंखें चीपणी

हो, काली हो, कोडाली स्त्री. बहरी, टूंटी, पांगलो, तोतली बोलने वाली, महारोगणी जीविताशा विमुक्त, वेलन्तरो, तेजरो, वा एकान्तर ज्वरा-गमनवाली हो और महा रोग जिसका नाम खैन अर्थात् क्षयी सर्व धातु वलक्षय जिस से जीव क्षण भर भी आराम नहीं पा सके, फिर रक्तपित्त रोग, कुष्टादिक जिसमें अत्यन्त दुर्गन्ध हो. कुबरी ठिंगनी, तिरछी भांकने वाली, बांकी देखने वाली, जिसके बांफनो गल छोटी हो गई हो; जिस से नेत्र डरावणे मालूम हो, अथवा नीच वंश की होय जिसकी जात कोई नही जानता हो वो जहां जावे वहां उसकी साख कोई भी नहीं भर सके, ऐसी अनेक तरह की कन्याओं के अर्थ मिथ्या याने बुरी को भली, वा भली को बुरी कहना, तथा रूप रोग और खोट क्या हीनेन्द्री, और बूढी को छोटी कहना इत्यादिक असत्य का त्याग करना जैसा हो वैसा कहना, इत्यादिक बोलने में हे स्वामी किसी समय वा कोई कार्यवश से मिथ्या बोलने का ही प्रसंग आ पड़े जैसे विवाहादिक सम्बन्ध में झूठ बोलना पड़ता है, तो वहां कदापि त्याग करने वालों को झूठ नहीं बोलना, परन्तु

॥ ढाल ॥

हांसी मसकरी काज, म्हांरे सूंस नही मुनिराज पालतां दोहिलोए, नही सूनै सोहिलोए ॥१४॥ इत्या-दिक परिमाण, मैं कीधा पचखाण, इमहिज पुरुष तणोए, कन्या ज्यों भाषणोए ॥ १५ ॥

॥ भावार्थ ॥

हास्य और मसकरी प्रसिद्ध है इनमें मेरे झूठ बोलने के सोगन नही है इसका प्रमाणोपरान्त जो सोगन किये हैं, वैसे ही पुरुष के वास्ते भी विचार लेनी कन्या की तरह से,

॥ ढाल ॥

कूमही ग्वाली जाण, दूध तणों परिमाण, वैंत न उचारणोए हुवे ज्यूं दाखणोए ॥ १६ ॥

॥ भावार्थ ॥

इसी तरह से गाय भैंस आदि के विषय मे भी अनेक प्रकार का असत्य भाषण होता है जैसे व्यावत का कमी वेसी तथा दूध का बेसी कमी कहना यह गवालीक है, श्रावक को इसकी मर्यादा के उपरान्त त्याग करना, और जैसा हो वैसा कहना ।

॥ ढाल ॥

भूमाली घरनें हाट, बोलै वाद नै घाट, धरती बावण तणीए, इत्यादिक घणीए ॥ १७ ॥

॥ भावार्थ ॥

भूम्मालीक अर्थात् पृथ्वी के वास्ते झूठ, मकान दुकान वगैरह के निमित्त जो असत्य भाषण और खेती वगैरह मे अनेक तरह से मिथ्या कहना ए भूमालीक है इसका प्रमाण उपरान्त त्याग करै वो श्रावक धर्म है ।

॥ ढाल ॥

कोई धन सौंपे आय, हूं राखूं घरमांय, थायन मांगे जराए, नटू नहीं तराए ॥ १८ ॥ मांगे धणी ज्यो आय, बाप भाई नै माय, बोरो आय अड़ैए, राजा रोकै जराए ॥ १६ ॥ जब झूठ बोलणरो नेम, राखूं व्रतसूं प्रेम, चोखो पालस्यूंए, दूषण टालस्यूं ए ॥ २० ॥

मांगे घनेरो भाय, तो नटजाऊं मुनिराय, सूंस नहीं कियोए. लोभें चित्त दियोए ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

चोथी झूठ थापण मोसा का त्याग याने अमानत मे खयानत जैसे किसी ने धन त्याय के विश्वास कर सौंप दिया घर में मेल लिया जब उस मेलने वाले को जरूरत हुई मांगने लेने को आया उस वक्त नहीं नटणा, वो खुद मालिक मांगे अथवा भाई मांगने आवे, चाहे मा उसकी हो, या वहोरे उसके आ बैठें तब नटणे पर राज दरबार हो, राज रोक देवे, तब झूठ बोलने का नियम है, तो अपने व्रत को न छोडै, सच्चा हाल ज्यो हो सो कहै, शुद्ध व्रत पालन करै, सर्व दूषण को टाल कर मिथ्या न बोलै वो धर्म है।

॥ ढाल ॥

माख भरावे मोय, झूठ न बोलूं कोय, ते पिण मोटकी ए, नहीं छोटकी ए ॥२२॥ ज्योहूं बोलूं वाय, घर पैलारो जाय, भाषा टालणीए, पाछे बोलणी ए ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांचवीं मिथ्या कूड़ी साक्षी, याने झूठी गवाही देना, इस झूठ का भी मेरे त्याग है, साक्षी भी छोटी और वड़ी दो तरह की है. वड़ी तो वो है जिसके बोलने से राजा दंडै और लोक भंडै, ऐसी झूठ के बोलने वाले को राज से दंड हो और दुनिया में बदनाम हो, जिसके हाथ पैर नासिका छेद कर सजा पाने के बाद देश से निकालते हैं, छोटा वो के जो दूसरे का नुकसान तो उस झूठ मे है पर वो बदनामी और वह बड़ी सजा जिसमें न हो अथवा हास्य कुतुहल में बोले, इसलिये मोटी झूठ याने झूठी गवाही देना इसके त्याग, अथवा साक्षी देऊं जिसके

देने से दूसरे के घर का नाश होता हो तो इस से वैसी भाषा टाल कर बोलनी चाहिये झूठी गवाही नहीं देनी चाहिये ।

॥ ढाल ॥

करै झूठराभेद, त्यागी आण उमेद, मनोरथ जद फलै ए, झूठ छोटो टलै ए ॥ २४ ॥ करण जोग घालो एम, करै झूंठरा नेम, व्रत करै इसोए पोतै निभै जिसोए ॥ २५ ॥

॥ अर्थ ॥

इसलिये श्रावक को जितनी प्रकार से झूठ बोली जाती है उन्हें समझ कर चित्तकी उमंग से और उमेद से त्याग करना, और छोटी झूठ कौतूहलादि कारण बोली जाती है उसका त्याग करना, यह मनमें हमेशा रखता रहै, जिस समय सर्वथा झूठ बोलने का त्याग होगा वही दिन धन्य होगा. तात्पर्य ये है के दूसरा श्रावक व्रत करण योग युक्त असत्य बोलने का त्याग करै अपने से निभ सके सो, कन्यालिक १ अर्थात् कन्या के निमित्त झूठ । ग्वालिक २ अर्थात् गाय आदिक निमित्त झूठ । भूमिक ३ अर्थात् जगां जमीन के निमित्त झूठ । थापण मोसा ४ अर्थात् अमानत में खयानत । कूडी साख ५ अर्थात् झूठी साक्षी । यह पांच प्रकार की झूठ का त्याग करे वो श्रावक का दूसरा व्रत है धर्म है, त्याग नहीं वो अव्रत है आस्रव है जिस से पाप लगता है ।

॥ अथ तीजो व्रत लिख्यते ॥

॥ दोहा ॥

तीजो व्रत श्रावकतणूं, करै अदत्तरा त्याग, मनमें समता आणिने, चोढै भाव वैराग ॥ १ ॥ इहलोकै जश

अति घणूं, परलोकै सुख पाय, भाव सहित आराधियां जनम मरण मिटजाय ॥ २ ॥ चोरी करै ते मानवी, गया जमारो हार, मनुष्यतणूं भव खोयने, नरकां खावै मार ॥ ३ ॥

॥ भावार्थ ॥

तीसरा व्रत श्रावक का अदत्त का त्याग, याने बिना दिये कुछ भी न लेना, ऐसे तीसरे व्रत को मन में समभाव ल्याके वेराग्य में भाव चढावे जिससे इस लोक में जश कीर्त्ति और परलोक में अत्यन्त सुखी होय, और भाव सहित आराधना करने से पुनः पुनर्जन्म मरण जीव अनादि काल से कर रहा है सो मिटने सकता है और चोरी करने से मनुष्य इस भव में दु:खी होके नरक में जाता है वहां महापीड़ और मार सहनी पड़ती है, इसलिये श्रावक को चोरी करने का त्याग करना अवश्य चाहिये, यथाशक्ति त्याग करना वो श्रावक का तीसरा (३) व्रत है।

॥ ढाल ॥ चालतेहोज ॥

तीजो व्रत छे एम, करै अदत्तरो नेम, न करै मोटकीए, वली छोटकीए ॥ १ ॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरु कहते हैं अदत्त का त्याग करैं वो तीसरा व्रत है, चोरी (२) दोय प्रकार की हैं एक वड़ी एक छोटी।

॥ ढाल ॥

म्हानो किम त्यागूं स्वाम, म्हारै घास इंधणरो काम, खिण खिण किणनैं कहूं ए, किहां किहां आज्ञा

लेऊंए ॥ २ ॥ म्हानो त्यागी ते धन्य, पिण म्हारो नहीं मन्न, चित चोखो नहींए, कर्म घणा सहीए ॥३॥ साथो दे गांठडी छोड़, धाड़ो करि तालो तोड़, वस्तु मोटी अछेए, धणी जाण्या पछेए, ॥ ४ ॥ इसा अदत्तरा त्याग मैं पचख्या आण वैराग, ते पिण परतणीए, नहिं घर भणीए ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

तब गृहस्थ बोल्या हे मुनिराज छोटी चोरी जो हास्य कुतूहल में या अनेक छोटी वस्तु मालिक के विना पूछे लेना इसके त्याग करने की मेरी सामर्थ्य नहीं, क्योंकि मेरे घास ईंधण कहिये काष्टादिक जलाने की चीजें, हरेक जगह से किञ्चित मालिक से विना पूछे लेने का काम पड़ता है तो वारम्वार किस किस सें पूछतां फिरूं, इसलिये इसके त्याग मुझ से नही निभ सकते, इसमें छोटी चोरी का त्याग करै वो धन्य है, लेकिन मेरा मन बहुल कर्मी होने से नहीं हो सकता और ज्यो बड़ी चोरी याने धाड़ा देना सांधा ऐंडा भीत फोड़ माल काढ़ लेना या पड़ी हुई गठड़ी वगैरह की उठा लेना धणी होते तथा ताला तोड़ना इत्यादि चोरी करने का त्याग मैंने वैराग्य ल्याके किया है लेकिन पराये घरकी चोरी के त्याग है अपने घरकी नहीं।

॥ ढाल ॥

म्हांरा कुटुंबादिकमें माल, मोमें पड़े हवाल, भोड़ घणीमहीए घरमें धन नहीए ॥ ६ ॥ जब तालो ल्यूं तोड़, वलो गाठड़ी छोड़, सांतोदे चोरस्यूंए, खोस ल्यूं जोरसूंए ॥ ७ ॥ इतरा मूंने आगार, ते नरक तणांदातार, रमणी वसपड़्योए, जंजीर जुड़्योए ॥८॥

राजा लेवै डंड, होय लोकमे भगड। चोरी नही करुंए इसो व्रत धरुंए॥ ९॥ इसो व्रत मुनिराय, मोने द्यो पचखाय। जीऊं जिहां भणीए व्रत, चोरी तणीए॥१०॥

॥ भावार्थ ॥

गृहस्थ कहता है मैंने जो चोरी करने का त्याग मर्यादा उपरान्त किया उसमे भी मेरे यह आगार हैं के मेरे द्रव्य की तंगी होने से और द्रव्य के अभाव से दुखी होने पर मेरे कुटुम्बियों का माल भीत फोड़ ताला तोड़ या जबरदस्ती से लेऊं तो मेरे त्याग नही, ए मेरे जो आगार हैं नरकादि दुखोंके देने वाले हैं, लेकिन स्रीवश होने से कैदी की तरह माहे जंजीर से जकड़ा हुआ हूं, चोरी के करने से राज तो डंड लेवै और दुनियां में बदनामी हो इसलिये चोरी नही करने का व्रत अगीकार करा दो, हे मुनिराज! यावत जीवन पर्यन्त जो व्रत लिया है उसको खंडित नही करूंगा।

चोरीकरम चराडाल, तिणथी पड़ै हवाल, दुख नरकां तणाए, सहै अतिघणाए॥ ११॥ चोरी ले पर माल, तिणसे पड़ै हवाल, नरक निगोद तणाए, दुःख होवे घणाए॥ १२॥ परधन लेवै ताह, देवै पैलारे दाह, ते नरकना पाहुणाए, जात लजावणाए, ॥ १३॥ इहलोकि उदय हुवै पाप, तो दुःख भुगते आपो आप, मार घणी पड़ैए, बिण आई मरैए ॥ १४॥ तिणरा काटै हाथनै पांव, वलि शूली देवै चढाय, नकटो बूचो करैए बले मार घणी पड़ैए ॥ १५॥मूंआ पछे चोररी काय, नाखे खाईरे मांय, तिहां कुत्ता आयनेंए, बिगाड़ै कायनैए ॥ १६॥

वले कागा चांच सू मार, तिणरा डैया काढ़े वार शरीर तिण तणूंए विपरीत दीखे घणूंए ॥ १७ ॥ तिणरा देखे मातनैं तात, मनमे घणां सिधात, इण चोरीकरी परलणीए, लजाया इम भणीए ॥ १८ ॥ लोक करे चोररी वात, ते सुणीमातनै तात, । बोले रोवताए. नीचो जोवताए ॥ १९ ॥ चोरी सूं दुःख अनन्त, तिणरो कहतां नावै अन्त । चिहुं गति भटकावणूंए, ते पाप चोरी तणूंए ॥ २० ॥ इम सांभल नरनार, चोरी न करो लिगार । समता रस आणिनेए, त्यागो जाणिनेए ॥ २१ ॥

॥ भावार्थ ॥

सत गुरू कहते हैं हे भव्य जीवो चोरी महा चाण्डाल कर्म है. ऐसे कामसे अनेक तरह के दुःख होते हैं, तथा नरकोमें अनन्त दु ख सहने पड़ते हैं, पराया माल चुरानेसे उस मालके मालिक के हृदयको महा दाह लग जाता है, इसीसे निगोदादिकके पाने वाले होते हैं, मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके जन्म लज्जित करते हैं, अत्यन्त पापके फलसे इसी भवमे दुख अपणे कर्मका भोगते हैं. फिर हाथ पग काटे जाते हैं, राज शूली चढ़ा देता है, सिर छेद भी कर देते हैं, नाक कान काट लिये जाते हैं अनेक प्रकारकी विटंबनां करी जाती है, मर जाने पर चोरके शरीरको खाईमें डाल देते हैं, तो वहां कुत्ते कव्वे आदि अनेक दुर्दशा करै है, उसकी ऐसो व्यवस्था माता पिता देखकर महा लज्जित होकर भागते हैं, सो भी सामने नहीं झांक सकते, नीची नजर ही रखते हैं, कहते हैं इसने हमारे कुलको कलंक लगाके लज्जित कर दिया है, सतगुरू कहते हैं अत्यन्त दुःखदाई चोरी कर्म है इसके पापसे चतुर्गती

संसारमें भ्रमण करना पड़ता है, ऐसा सुनके चोरी नहीं करणेका व्रत समता ल्याके धारण करो।

कोई आणी मन वैराग, सर्वथकी दे त्याग। करण जोगां करिए, मन समता धरिए॥ २२ ॥ कोई सोंस- करी दे भांग, तिणरा घणा निकलसी सांग। महा पापी मोटकोए, करम दियो धकोए ॥ २३ ॥ चोखा पाले जे सोंस, त्यांरी पूरीजे मनरी होंस। जासी देव- लोकमेंए, कोई जासी मोक्ष मे ए॥ २४ ॥

कई जीव ऐसे विरक्तो वैराग्य मग्न होके तीन करण तीन योगसे मनमें समता भावसे सर्वथा प्रकार चोरी करणेका त्याग करते हैं वो धन्य हैं, केई भारी गर्मो जीव त्याग करके व्रत भंग कर देते हैं वो महा पापी होके कर्म मय तोफानके धक्केमें संसार समुद्रमें डूबते हैं, इस लिये हे भव्यजनों अपणे लिये व्रत पञ्चख्खाणके आराधणेसे मनके मनोरथ सिद्ध होते हैं, वो सुव्रती जीव देवलोकमें या मोक्षमें जाते हैं।

॥ इति तृतीय व्रतम् ॥

॥ अथ चतुर्थ व्रतम् ॥

दोहा—मनुष्य तणो भव पायने, जे नर पाले शील। शिव रमणी वेगा वरे, करे मुक्तिमें लील ॥१॥ साधू त्यागे सर्वथा गृहचारी परनार। मांठी निजर जोवेनहीं, तिणरा खेवा पार ॥२॥ कैयक श्रावक एहवा, आणे मन वैराग। भोग जाणे विष सारिषा, घर नारी दे त्याग ॥ ३ ॥

मनुष्य भव पाके शीलपाले याने मैथुनका त्याग करे यह श्रावकका चोथा (४) व्रत है, उसके पालने से वो जीव मोक्ष स्त्रीको जल्दी वरके सिद्धक्षेत्र में ज्ञान दर्शनादि गुणों मयी परमानन्द भोगते हैं, साधूके तो

सर्व प्रकार मैथुनके त्याग होते हैं, और श्रावकके परदारा के त्याग होना आवश्यक हैं, जो जीव परस्त्रीको खोटी नजरसे नही देखै तो उसके खेवापार याने परम सुख परमानन्द पदपावैं। कैयेक श्रावक ऐसे वैराग्य भाव पूर्ण होते हैं वो भोगोको जहर (विषको) बराबर समझकर अपणी घरकी हजारो स्त्रियोंसे मैथुन सेनेके त्यागी हैं, वो जीव महा वैरागी हैं वान्छित फल पाते हैं।

॥ढाल॥

(देशी तेहिज)

चोथो व्रत सुम जाणा, अबंभ तणा पचखाण। देवांगना मनुष्यणीए, त्यागी तिर्य्यञ्चणीए ॥ १ ॥ वली पोतारी नार, तेहनूं करै विचार। तजै दिन राततीए, परणी हाथतीए ॥ २ ॥ पक्खियादिकना नेम, नर तो पालेएम। मोहणी परिहरैए, आत्मा बश करैए ॥ ३ ॥ कोई सरव थकी दे त्याग, आणी मन वैराग। विषयें उद्धरैए, मन समता धरैए ॥ ४ ॥

॥ भावार्थ ॥

सद्गुरु कहते हैं भव्यजनों! अब्रह्म का त्याग करे वो श्रावक का चौथा व्रत है इन्द्रियों के भोगों को जहर विष के समान जाण कर पर स्त्री का त्याग करै जिसमें देवांगना का मनुष्यणी का तिर्यंचणी प्रमुख का त्याग, और घरकी स्त्री का भी विचार करै दिन रात का नियम माफिक त्याग करे, जिसमें परस्त्री प्रमुख का तो श्रावक के त्याग होना अवश्य चाहिये, आतमा को वश करके मैथुन सेना त्यागै सोही धर्म है, कई जीव वैराग्य के भाव से विषयों में लिप्त न होके घरस्त्री और परस्त्री का त्याग मनमें समता धरके करते हैं उन्हें धन्य है।

म्हारे घर नारी सूं नेह, तिण ने किम देऊं छेह। आत्म वश नही ए कर्म घणासही ए ॥ ५ ॥ करूं दिवस तणा पचखाण, रात तणा परमाण। संतोष आदरूं ए, विषय परिहरूं ए ॥ ६ ॥ पर नारी सूं प्रेम, मैं कीधो छे नेम। सुई डोरा करीए, ऐसी विगत धरीए ॥ ७ ॥ जे सेवे परनार, ते गया जमारो हार। नरकां मांही पड़े ए, ढील नहीं करैए ॥ ८ ॥

॥ भावार्थ ॥

तब गृहस्थ बोला हे मुनिराज! आपने फरमाया वो सत्य है मैं भी ऐसा ही जानता हूं परन्तु घरकी स्त्री के स्नेह राग से फंसा हुआ हूं इससे त्याग नहीं हो सकता आत्मा वश न ह हो सकती, इसलिये दिन का तो त्याग करता हूं और रात का प्रमाणोपेत मैथुन का त्याग है और परस्त्री से सूई डोरावत् सेने का त्याग है। परस्त्री सेवन करने वाले मनुष्य जनम हार कर नरकों में जल्दी ही जाते हैं।

चौथो व्रत घणो श्रीकार, सारां व्रतांरो शिरदार। व्रतांरो नायको ए, मुक्तिरो दायको ए ॥ ९ ॥ शील व्रत छे मोटो रत्न, तिणरा करिए यत्न। ते आतम उद्धरै ए, शिव रमणी वरै ए ॥ १० ॥ ए व्रत पालो निर्दोष, त्यांनै नैडी मोक्ष। तिणमें शंका नहीं ए, श्रीजिन मुख सूं कही ए ॥ ११ ॥ च्यार जातरा देव, करै ब्रह्मचारी री सेव। वले शीश नमावता ए, वादै गुण गावता ए ॥ १२ ॥ जिण चौथो व्रत दियो भांग त्यारां घणा निकलसी सांग। ते नरकां मांही पड़ै ए,

घणूँ रड़ वड़े ए ॥१३॥ इह लोकेफिट फिट होय, पर-लोके दुर्गति जोय। तिण जन्म बिगाड़ियो ए, मानव भव हारियो ए ॥ १४ ॥

॥ भावार्थ ॥

चौथा व्रत अत्यन्त श्रेष्ठ और सर्व व्रतों में मुख्य है और मोक्ष का दायक है, इस शीलव्रत रत्न को जत्न कर अखंड रखने से आत्मोद्धार करके मुक्ति रमणी वरते हैं, इस व्रत को शुद्ध पालने वाले के मोक्ष नजदीक है श्री जिनेन्द्रों ने अपने मुख से फरमाया है।

॥ उक्तंच ॥

देव दानव गंधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा।
वंभयारी नमंसंति, दुक्कडं जे करंतिते ॥ १ ॥

॥ भावार्थ ॥

देवता दानव गन्धर्व यक्ष राक्षस किन्नर आदि ब्रह्म व्रत पालने वाले को नमस्कार करते हैं कारण ये महा कठिन काम है इससे वे पुरुष पुरुषोत्तम हैं।

॥ भावार्थ ढालका ॥

भुवनपति वानव्यन्तर जोतषी वैमानिक ये चारों प्रकार के देवता ब्रह्मचारी की सेवा भक्ति करते हैं मस्तक नमाके गुण ग्राम करते हैं, और जो चौथा व्रत का भंग करते हैं उनको पुनर्जन्म मरणादिक सांग बहुत करने पड़ते हैं, नरको के दुःख सहने पड़ते हैं, इसलोक में दुनियां उनकी गर्हा करती है, और परलोक में महादुखी होना पड़ता है।

जातिवंत कुलवंत ते आतम नित्य दमन्त, ते व्रत पालसी ए। कुल उजवालसी ए ॥ १५ ॥ नाहि जाति-वन्त कुलवन्त, वलिरसगद्धि अत्यन्त। ते विषयरी पासियो ए, वरत विनासियो ए ॥ १६ ॥ निरलज

लज्जा रहित, वलि विषय विकार सहित। तिण व्रत कापियो ए, ते मोटो पापियो ए ॥ १७ ॥ ब्रह्म ब्रतरा भांजणहार, धूगत्यांरो, जमवार। ते न्यात लजावणाए, दुरगति ना पावणा ए ॥ १८ ॥ घणा लोकांरे मांय, ऊंचै स्वर बोल्यो नहि जाय। या खामी मोटी घणीए, व्रत भांजण तणीए ॥ १९ ॥ यो मोटो कियां अकाज, लज्जावन्तने आवै लाज। निरलज लाजै नहीं ए, सत्य घणो सहीए ॥ २० ॥ इण शील भांजणरो सोय, कहवत मिटै न कोय। या मोटी महणीए, जीवे जिहां भणी ए ॥ २१ ॥ इण पापी किधो अकाज, अजे न आवै लाज। तोही बोले गाजतोए, निरलज नहिं लाजतो ए ॥ २२ ॥ ब्रह्म व्रत तणों करै भंग, तिणरो कदे न कीजै संग। कुकर्म माहिं भिलियोए, करम कादे कलियोए ॥ २३ ॥

॥ भावार्थ ॥

ज्यो जातिवन्त कुलवन्त होते हैं वोही अपनी आत्मा को दमन कर ब्रह्मव्रत पालते हैं, और कुलको उज्वल याने उजला करते हैं, और ज्यो जातिवन्त कुलवन्त नहीं हैं वो रसगृद्ध याने आसक्त वसीभूत होके विषय रूप पासमें पड़के ब्रह्मव्रत का विनाश करते हैं, वो निर्लज्ज विकार सेवी व्रत को काटके महा पापी होता है ब्रह्मव्रत भंग करने वाले को धिक्कार है, ऐसे जाति लजावने वाले जीव दुर्गति के पाहुणे हैं, उनसे बहुत लोको में ऊंचे स्वर से नहीं बोला जाता है क्योंकि यह बड़ी भारी खोट है, कोई लज्जावान होय उनको शरमाना पड़ता है, किन्तु निर्लज्ज

तो निन्दा से भी नहीं लजाते हैं, लेकिन इस शीलव्रत भाजने का सल्य तो उनके जीमें खटकता ही है, चाहे जितना बड़ा आदमी क्यों न हो मगर लोगों में कहावत तो बनी ही रहती है, ए द्रोणा यावत् जीवन पर्यन्त रहता है, पांच आदमियों में अगर बोले तो कहते हैं के देखो इस पापी ने भारी अकाज किया लेकिन अब भी ऊंचा होके बोलता है, इसलिये ब्रह्म व्रत को भंग नहीं करना तथा करने वाले का संग भी नहीं करना चाहिये, संग करने से उसके कर्त्तव्य सामिल होके कर्ममयी कादे में गलित होते हैं।

जो सेवे परनार, ते गया जमारो हार, लजावे न्यातनै ए, पड्या मिथ्यातमेंए ॥२४॥ परनारी मा बहन समान, त्यांसूं न करै मांठो ध्यान, चित चोखो कियो ए, ब्रह्मव्रत लियो ए, ॥ २५ ॥ कोई छोड़ शरमनैं लाज, त्यांसूंई करै अकाज, ते निर्लज नहिं लाजियो ए, डाकी बाजियो ए ॥२६॥ करम जोग जाय भांज, पिण छेतानें आवे लाज, भीई लाजै नहीं ए, वेशरमी सही ए ॥२७॥ कोई सिधावे मन मांहिं खोटो कियो अन्याय, पछतावो अति घणो ए, खोटा कर्तव्य तणूं ए ॥२८॥ जिणरो चोथा व्रत गयो भांग, तिणरो पूरो अभाग, ते नागो निरलजोए, तिण में नहीं मजो ए॥२९॥ ब्रह्म व्रतनी नव बाड, जो पालै निर अतिचार, अडिग सैंठो घणूंए, मन जोगां तणूं ए ॥३०॥ जिण लोप दीधी नव बाड़, तिणरा हुवे विगाड़, खुराबी होवे घणी ए, ब्रह्म भंग तणी ए ॥३१॥ व्रत भांग सेवे परनार, ते गया

जमारो हार, फिट फिट होवै घणूं ए, कुजश तिण तणूं ए ॥३२॥

ज्यो आदमी पराई स्त्री को सेते हैं वो मनुष्य व्यवहार कर अपणी जातिको लजाते हैं, मिथ्या मयी कूपमें पड़ते हैं, और ज्यो परस्त्री को माता भैण के समान समझ कर खोटी नजर नही ताकते उनने अपणे चित्तको स्वच्छकर ब्रह्मव्रत अंगीकार किया है, कोई ऐसे निर्लज्ज होते हैं सो मा, भैण से भी नही चूकते, वो बाजे डाकी दुनियां मे कहलाते हैं, और कई एक ऐसे भी हैं, पूर्व संचित पापसे कभी ऐसा हो भी जाय तो जन समुदाय में लज्जित होते हैं मन में पछतावा करते हैं मैंने अनर्थ किया अन्याय किया है इस वास्ते जिसके चोथै व्रतका भंग होगया उसका तो पूरा अभाग्य है, वो कपड़े सहित भी नंगा निर्लज्ज है, इसमें कुछ मजा नहीं है इस वास्ते ब्रह्मव्रत को नव वाड़ सहित पालन करै और दृढ़ होकर अडिग रहै मनको चंचल न करै उनहीं की वलिहारी है जिसने नव वाड़ को लोपदी है उसका विगाड़ वहोत है ब्रह्मव्रत के भंग करने से, जो इस व्रत का भंग करके पराई स्त्री सेवन करते हैं वो मनुष्य जन्म व्यर्थ खोके संसार मे निन्दित वहुत होते हैं उनका अपयश वहुत दुनियां में होता है।

॥ ढालतेहिज ॥

चोखे चित पाले शील, ते रहै मुक्ति मे लील, राखो नित्य भासता ए, पामै सुख सास्वता ए ॥ ३३ ॥ दिन दिन चढ़ते रङ्ग, पालो व्रत अभङ्ग। मन समता धरो ए, शिव रमणी वरो ए ॥ ३४ ॥ ब्रह्मव्रत ने श्री जगदीश, ओपमा कही वत्तीस। दशमां अंग मे कही ए, शूरा पालै सही ए ॥ ३५ ॥ करण जोग सुजाण,

व्योरा शुद्ध पिछाण । चोखे चित्त पालज्यो ए, दूषण टालज्यो ए ॥ ३६ ॥

॥ भावार्थ ॥

सतगुरू कहते हैं इस शीलव्रतको चोखे चित्त पालने से मोक्ष में साश्वते आत्मिक सुखों में लील विलास सदा सर्वदा पाते हैं, इसलिये इसकी आस्था प्रतीति रखके दिन २ चढ़ते प्रणामों से मनमें समता ल्याके ए अबंभव्रत को पालन करो इस व्रतको श्री जगदीश्वर प्रभुने श्री दशमां अंग में बत्तोस ओपमा दी है, इस ब्रह्मव्रत को जो शूरवीर पुरुष होते हैं सो पालते हैं और वोही शिव मयी स्त्रीको वरते हैं इस लिये कहना है महानुभावों करण जोग व्योरा शुद्ध विचारके लिया हुआ व्रत को अच्छी तरह निर्दोष पालन करो कोई प्रकार से किसी भी हालत में दोष मत लगावो ।

अथ पंचमव्रत

॥ दोहा ॥

पांचमें व्रत त्यागै परिग्रह, ते परिग्रहो मूरछा जाण । तिणसूं निरन्तर जीवरे, पाप लागै छे आण ॥ १ ॥ ए मोटो पाप छे परिग्रहो, तिणथी गोता खाय । सांसो हुवे तो देखल्यो, तीन मनोरथ मांय ॥ २ ॥ ए अनर्थ ज्ञानी भाषियो, नरक ले जावे ताण । यती मार्गनूं भंजणो, निषेध कियो इम जाण ॥ ३ ॥ खेत्तु वत्थु हिरण सुवर्ण तणो, धन धान वलि जाण । द्विपद नें चोपद तणो, कुम्भी धातु तणूं प्रमाण ॥ ४ ॥ खेत

उघाड़ी भूमिका. वत्थु हाट हवेली जाण। रूपा नें सोना तणूं करै शक्ति सारू पच्चखाण॥ ५॥ सचित अचित मिश्र द्रव्य छै, यां सगलारो करै प्रमाण। मूरछा तै अभिन्तर परिग्रहो, तिणसूं पाप लागै छै आण॥ ७॥ बारज परिग्रहो नव जातिरो, ममता करि ग्रह्यो छै ताण। तिणसूं यानें परिग्रह कह्यो, तिणथी पाप लागै छै आण॥ ८॥

॥ भावार्थ ॥

सतगुरु कहते हैं पञ्चम् व्रत में श्रावक परिग्रह को मर्याद करै; सचित अचित और मिश्र इन तीनूं जाति के द्रव्य पर मुरछा है सोही परिग्रह है जिसमें जीवके निरन्तर पाप लगता है, परिग्रह रखना ये मोटा पाप है इसमें चतुर्गति संसार मयी समुद्र मे जीव अनादि कालसे गोता खा रहा है, श्रावकों के तीन मनोर्थ में परिग्रह को महा अनर्थ का मूल तथा अत्यन्त दुःखदाई कहा है, परिग्रह में लिप्त रहने वाला जीव नरक में जाते हैं, तथा यती मार्ग का ध्वंस करने वाला है, इस लिये परिग्रह की निषेधना ज्ञानियोंने करी है, सो परिग्रह नव प्रकारका है– खेत १ याने ऊघाड़ी भूमि, वत्थु २ याने ढकी भूमि मकान वगेरह, हिरण ३ याने चांदी आदि वस्तु, सुवर्ण ४ याने सोना, धन ५ याने रोकड़ रुपया आदि, धान ६ याने अनाज, कुम्भी धातु ७ याने तांवा पीतल कांसी लोहा आदि, द्विपद ८ याने दास दासी आदि चौपद ९ याने गाय भैंस घोड़ा हाथी आदि, ये नव प्रकार का परिग्रह है सो बार्ज परिग्रह है और इनपर मूरछा रखवे सो अभिन्तर परिग्रह है, बार्ज अभिन्तर परिग्रह से जीव के पाप लगता है इस लिये श्रावक यथा शक्ति इनकी मर्याद करिके त्याग करें सो श्रावक का पञ्चम व्रत है, आगार रक्खा वो अव्रत है।

॥ ढाल देशी तेहिज ॥

परिग्रहनूं परिहार, श्रावक करे विचार, समता उर धरे ए, नव भेदे करे ए ॥१॥ खेतु वथु छै एह. सोनो रूपो तेह, धन धान द्विपदा ए, कुम्भी धातु चौपदा ऐ, ॥२॥ ए नव विधि संख्या थाय, त्यागी वंछा देवे मिटाय, तृष्णा परिहरे ए, मन समता धरे ए ॥३॥ ममता बुरी बलाय चिहूं गति में भटकाय, घणो रड़ बड़े ए, नहीं जक पड़ै ए ॥ ४ ॥ मनसूं करो विचार, ए नरक तणू दातार, एहनें टालवो ए, व्रतने पालवो ए ॥५॥ नव जातिरो परिग्रह ताहि, विचार करी मनमांहि, मूरछा परि हरो ए, मार्ग नहीं मुक्तरो ए ॥६॥ ए मोटो प्रतिबंध पाश, करै बौध बीजरो नाश, मार्ग छै कुगतिरो ए, नहीं छै मुक्तिरो ए ॥७॥ परिग्रह छै मोटो फंद, कर्म तणूं छै बंध, नरक ले जावै सही ए, तिहां मार घणी कही ए ॥८॥ परिग्रह महा विकराल, मोटो छै माया जाल, तिण में खूतां सही ए, धर्म पावै नहीं ए ॥६॥ कनक कामणी दोय त्यां सियां दुर्गति होय, फन्द छै मोटको ए, त्यांसूं खावै धको ए ॥१०॥ कनक कामणी दोय पैलानें पकड़ावे कोय, तिण फन्द में नाख्यो सही ए, निकल सकै नहीं ए ॥११॥ परिग्रह दीधां कहै धर्म, ते भूला

अज्ञानी भर्म, कर्म घणा सही ए, समझ पड़े नहीं ए ॥१२॥ दूण परिग्रह तणा दलाल, त्यां मे पिण होसी हवाल, दुःख नरकां तणा ए, सहसी अति घणा ए ॥१३॥ ए राख्यां लागे छे कर्म रखायां पिण नहीं धर्म, तीन करण मारखा ए, कीज्यो पारखा ए ॥१४॥ ए परिग्रहना दातार त्यांरा सावद्य जोग व्यापार, मार्ग नहीं मोखरो ए, छांदो दूण लोकरो ए ॥१५॥

॥ भावार्थ ॥

सत्गुरू कहते हैं हे भव्य जनों! खेतु वत्थु आदि ए नवू-ही जाति का परिग्रह महा दुःखदाई है बोध बीजका नाश करिके करन दु खोंको देनेवाला है इसमें ज्यादह मोटा प्रतिबंध पाश कोई नही है इसकी अभिलाषा से ही अशुभ कर्मका बंध होता है तो परिग्रह रखने से या रखावने से तो महा पाप लगता है इसलिये इसकी ममता मत करो ये बड़ा माया जाल फन्द है इसमे लिप्त रहने से धर्म नहीं किया जाता है कनक और कामनी ए दोनों ही सेनेसे और सेवाने से दुर्गति जाते हैं परन्तु कितनेक अविवेकी जन परिग्रह देनेमें धर्म समझते हैं सो उनकी भूल है अज्ञानवश भ्रममें पड़के पंचमा आस्रवद्वार जो परिग्रह है उसे सेने सेवाने में जिन कथित धर्म प्ररूपते हैं, किन्तु यह नहीं विचारते कि परिग्रह रखना सो आस्रव द्वार है जिससे अशुभ कर्म लगते हैं तो दूसरेको देके रखाने और अनु-मोदने में धर्म कहांसे होगा रखना सो पहिला करण है रखाना वो दूसरा करण है और रखते हुए को भला समझना वो तीसरा करण है यदि पहिला करण में पाप है तो दूसरा और तीसरा करण में धर्म कैसे हो सका है, इस लिये बुद्धिवान जनोंको करण जोग की पहिचान करके यथा शक्ति परिग्रहका त्याग करना चाहिये आगार रक्खा सो

अव्रत सेना है और उसमें से किसी दूसरे को दिया सो अव्रत सेवाना है सावद्य जोग व्यापार है देना देवाना आदि यह सब संसार का मार्ग है परन्तु मुक्ति का मार्ग कदापि नहीं है।

॥ढालतेहिज॥

अशणादिक च्यारूं आहार, श्रावकरे परिग्रह मझार, ते खावे खवावे सहीए, तिणमें धर्म नहीं ए ॥ १६ श्रावक ते मांहों मांहि, देवे लेवे छे ताहि, ते सघलोही परिग्रहो ए, इणमें शंका मत धरोए ॥१७॥ सचित अचित मिश्र द्रव्य, तिण ने आगे पाछे सर्व, ए सघलो परिगरो ए, ते ममता मांहि खरोए ॥१८॥ सचित अचित सघला ही ताहि, ग्रहस्थरे परिग्रह मांहि, कह्यो उववाई उपांग में ए, बलि सुयगडायंगमें ए ॥१६॥ त्यांरो श्रावक कियो प्रमाण, त्याग्यो ते व्रत पिछाण, बाकी अव्रत में राखियो ए सूत्रके साखियो ए ॥२०॥ परिग्रह दियो धर्म हेत, तिणरी आज्ञा देत कहि कहिने दिरावताए, एहवो धर्म करावता ए ॥२२॥ धनथी धर्म न थाय, तीन कालरे मांय, सांचो करि जाणिजोए, शंका मत आणिजो ए ॥२३॥ इण परिग्रह मांहि रक्त, त्यांनें आवे नहीं सम्यक्त, मूरछा तिणमें सहीए, समझ पड़े नहीं ए ॥२४॥ ज्यांरे परिग्रहासूं परतीत, तेतो होसी घणा फजीत, नरकां जावसीए, जोखां खावसीए ॥२५॥ इणथी बधे संसार,

जावै नरक निगोद मझार, घणो रडवडैए, जक नहीं पडैए ॥२६॥ सचित अचित द्रव्य ताहि, ग्रहस्थरे अव्रत मांहि, ज्यांरो त्याग कियो नहीं ए, त्यांरो पाप लागै सही ए ॥ २७ ॥ तीन करण लागै पाप, तिणसूं दुःख भोगवै आप, त्यांनें त्याग्यां व्रत होसीए, जब होसी खुशीए, ॥२८॥ करण जोग घालीजे जाण, कीजे शुद्ध पचक्खाण, चोखैचित पालजोए, दूषण टालजोए ॥२९॥

॥ इति पञ्चम् व्रत ढाल ॥

॥ भावार्थ ॥

आहार पानी आदि च्यारूं प्रकार के आहार श्रावक के पास है सो परिग्रह में है उन्हें स्वयं खावै या खुवावै और भला जाने जिससें धर्म नहीं है तथा सचित अचित मिश्र द्रव्य जो ग्रहस्थी के पास है वो भी परिग्रहमें ही है मतलब जो जो आगार रक्खा है सो अव्रतमें है उववाई और सुयगड़ा अंग सूत्र में खुलासा कहा है त्याग किया सो व्रत और जिस द्रव्य के त्याग नहीं किया सो अव्रत है, धर्म हेतु परिग्रह दियां दिवायां और देते हुए को अच्छा समझा सो आस्रव है जिससे पाप कर्म उपार्जन होता है क्योंकि धन तो अनर्थ का ही मूल है धनसे तो धर्म होय तो फिर धन के त्याग क्यों करै, जितना बन सके उतना ही धनोपार्जन करे क्योंके जितना ज्यादह धन होगा उतनाही देके धर्म करेगा तो फिर धनवान तो विना तप संयम् किये ही धनके जरियेसे सीधे मोक्षमें चले जायगे और निर्धन कदापि नही मोक्ष जायगा किन्तु नही २ तीन कालमें भी धनसे धर्म नहीं होता है परिग्रह के तो त्याग करने करावने और अनुमोदन में ही धर्म है, परिग्रह में रक्त रहने वालेको सम्यकका लाभ नहीं होता है और सम्यक का अभाव में मोक्ष कदापि नहीं जा सका है, परिग्रह में तो संसार बधता

ही है तथा पाप कर्मोपार्जन करिके नरक निगोदादिमें जाके अनन्त दुःखोंके भोगी होता है ज्ञानी देवोंनें ऐसा ही शास्त्रों में कहा है इस लिये सतगुरू कहते हैं हे भव्यजनों! इस परिग्रह को महा दुःखदाई जान के करण जोगां से यथाशक्ति त्याग करो और अपने लिये हुए व्रतको अखंड पालन करो।

॥ अथ षष्टम् दिशि मर्याद व्रत ॥

॥ दोहा ॥

पांच अणु व्रत धारतां, मोटो बांधी पाल। छोटारी अव्रत रही, ते पाप आवे दगचाल ॥१॥ तिण अव्रतनें मेटवा भणी, पहिलो गुणव्रत देख। दिशिमर्यादा मांडनें टाले पाप बिशेष ॥२॥ मांहिली अव्रत मेटवा, दूजो गुण व्रतधार। द्रव्यादिक त्यागन करै, भोगादिक परिहार ॥३॥ जे द्रव्यादिक राखिया, जेहनो अव्रत जाण। अर्थ दण्ड छूटे नहीं, अनर्थ दण्ड पचक्खाण ॥४॥ छट्ठो व्रत श्रावक तणूं करै दिशि तणूं प्रमाण। हिंसादिक त्या छज दिशातणी, मनमें समता आंण ॥५॥

॥ भावार्थ ॥

उपरोक्त पांच अणू व्रत जोश्रावक अङ्गीकार किये हैं जिसमें बोहतसी अव्रत स्थूल पणें मेटदी है इन उपरान्त जो अव्रत रेही है जिसमे पाप मयी पानी दगचाल आ रहा है इसलिये तीन गुन व्रत थाने पञ्च. अणू व्रतों को गुनदायक हैं इसलिये उनका वर्णन करते है, प्रथम गुनव्रत दिशि गमनका मर्याद, दूसरा गुनव्रत उपभोग परिभोगकी मर्याद, और तीसरा गुणव्रत अनर्थ दण्डका त्याग है, जिसमें पहिला गुणव्रत पूर्वादिदिशि मर्याद कहते हैं अर्थात् ऊंची नीची आदि दशों दिशाकी

मर्याद करके उपरांत हिंसादि सावद्य कार्य करने का मन में समता लाके त्याग करें सो श्रावकका छट्ठा व्रत है,

॥ ढाल ॥

इणपुर कम्बल कोई न लेसी । फिर चाल्या पाछा परदेशी ॥एदेशी॥ ऊंची नीची दिशि कोस बे च्यार । तिण बाहिर सावद्य परिहार । किणी दिशि पांचसय प्रमाण । इण विधि दिशितणों पचखाण ॥१॥ पृथिवी यादिक जीव न मारे, छोटाई भूंठतणूं परिहार । चोरी न करे मैथुन टाले । धनसूं ममता पाछी वाले ॥२॥ मांहि बैठा बाहिरलो लेवो देवो । तिणरा त्याग करे स्वयमेवो । बाहिरली वस्तु मांहि मंगावे नाहीं । मांहिली वस्तु बाहिर दे नाहीं ॥३॥ जघन्यतो एक आस्रव त्यागै कोई । उत्कृष्टा आस्रव त्यागे पांचूंई । एक करण तीन जोगसूं जाण । बारला आस्रवरा करै पचखाण ॥४॥ कोई दोय करण तीन जोगसे ताई । त्यागकरी अव्रत दे मिटाई । कोई तीन करण तीन जोगसूं जाण । पांचूं आस्रवरा करै पचखाण ॥५॥ बारला आस्रवनां कीधा त्याग । अव्रत छोड़ी छे आणि वैराग । क्षेत्र थकी सर्व चौलमें जाण ॥ काल थकी जावजीव पचखाण ॥६॥ कोई देवादिक तिणने नाखैं वारे । तो पिण नही सेवै आस्रवद्वार । कोई

कष्ट पड़्यां राखैछै आगार। पोतारी कचाई जाण तिंवारे ॥७॥ कोई मंत्री देवादिकनें बुलावैं। तिण आगै आपरो काम करावे। ते पिण छट्टो व्रत लियो तिणवार। इतनूं पहिलां राख्यो आगार ॥ ८ ॥ इत्यादि राखे आगार अनेक। आगार बिना करे नहीं एक। आगार राख्यां अव्रत पाप लागे। बिन आगार कियां व्रत भागे ॥९॥ छट्टा व्रतरो बहु बिस्तारो। ते कहितां नहीं आवै पारो। ये संक्षेप कह्यो विस्तार। बुद्धिवन्त जाण लिसी अनुसार ॥१०॥ छट्टे व्रत एहवा पचखाण। मांहि घणां द्रव्यादिक जाण। तेहनी अव्रत टालण काज। सातमूं व्रत कह्यो जिन राज ॥११॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

छट्टा व्रत में श्रावक दशों दिशिका प्रमाण करै सो कहते हैं। ऊंची नीची दिशिका त्याग तो यथाशक्ति दो च्यार कोसादिक उपरन्त जाने का त्याग करैं, और तिरछी दिशा अर्थात् पूर्व पश्चिम उत्तर दक्षिण तथा विदिशा का पांचसह या कम ज्यादह कोस यथाशक्ति रखके उपरान्त जाणे का त्याग करैं, कदा प्रमाण उपरान्त जाणे को काम पड़जाय तो वहां पृथिव्यादि षटकायों को मारने का छोटी बड़ी झूंठ बोलने का चोरी करने का मैथुन सेनेका और परिग्रह रखने का त्याग है. जो दिशि में जाने आने का आगार रक्खा है उस जगह भी बाहर की वस्तु मांहि नही मंगावें और मांहि की वस्तु बाहर न भेजें यदि आगार रक्खें तो उसका प्रमाण करैं यथाशक्ति, जघन्य एक आस्रव द्वार सेने का उत्कृष्ट पांच हीं आस्रव द्वार सेने का त्याग करे, कितनेक

श्रावक ऐसे होते हैं सो एक करण तीन जोग से त्याग करते हैं कित-नेंक दोय करण तीन जाग से तथा दिशिका प्रमाण किया उसके वाहिर से वस्तु मंगाणे का वा उसके उपरान्त जाके आस्रव द्वार सेने का त्याग किया है उन्होंने वैराग्य से अव्रत छोडी है, ए त्याग क्षेत्र थकी सर्व क्षेत्र में कालथकी यावत जीवन पर्यन्त हैं अर्थात् छटा व्रत के त्याग किञ्चित काल के नहीं होसक्ते हैं, कदा ऐसे त्यागवाले को कोई देव-तादि वाहिर नांख दे तो फिर वहां पंच आस्रवद्वार नहीं सेना क्योंके उसने त्याग किया है, तथा किसीनें कष्ट पड़णे से आगार रख लिया है या अपने मंत्री देवता को बुलाके अनेक काम करते कराते हैं तो भो आगार पहिले रख लेना चाहिये अर्थात् त्याग करते समय जो आगार रक्खा है सो अपनी कचाई है जिसमें अव्रत का पाप लगता है परन्तु त्याग का भंग नहीं होता, इसलिये जो आगार नही रक्खा वो नहीं करें, और श्रावक अपना छट्टा व्रत का पालन निर्दोष करे जिससे यह लोक परलोक में सुखो हो, इस छटा व्रतके वहोत विस्तार हैं यहा संक्षेप मात्र कहा है इसमें बुद्धिवन्त विचार लें।

॥ इति छट्टा व्रत सम्पूर्णम् ॥

॥ अथ सातमां व्रत प्रारम्भ ॥

॥ दोहा ॥

सातसूं व्रत श्रावक तणूं, तिणमें उपभोग परि-भोगनां त्याग। गमतो वस्तु त्यागे तेहने, आवे छै वैराग ॥१॥ भोग आवै एक वारमें ते कहिए उपभोग। वारंवार भोग आवै जीवनें, तिणनें कह्यो छै परिभोग ॥ ॥२॥ उपभोग परिभोगनौं, अव्रत कही भगवान। त्यांरो

त्याग करै सतगुरु कनें, ते सातलूं व्रत प्रधान ॥३॥
उपभोग परिभोग काम छै, ते भोग महा दुःख खान।
किम्पाक फलनीं दीधी ओपमा, भगवन्त श्री वर्द्धमान ॥४॥

॥ भावार्थ ॥

जो छट्ठाव्रतमें आगार रक्खा उसकी अव्रत मेटणे के लिये सातमां व्रत कहते हैं। सातमां व्रत में श्रावक उपभोग परिभोग के त्याग यथाशक्ति करें, जो वस्तु एक वक्त भोगने में काम आवे अर्थात् आहार पानी आदि जिसे उपभोग कहते हैं और जो वारंवार भोगने में आवें जैसे वस्त्र जेवर आदि उसे परिभोग कहते हैं, इन उपभोग परिभोगों को भगवन्तों नें किम्पाक फल समान कहा है सो भोगते समय अच्छे लगते हैं और पीछे महा दुःखो की खान हैं, इसलिये जितना जितना आगार रक्खे वो अव्रत हैं जिससे पाप कर्मोपार्जन होते हैं आगार उपरान्त त्याग सतगुरु के पास किया वो सातमां व्रत है, उपभोगों परिभोगों के बहोत भेद हैं परन्तु इहां छव्वीस बोल करके वताते हैं।

॥ ढाल ॥

डूगापुर कम्बल कोई न लेसी फिर चाल्या पाछा परदेशी ॥ एदेशी ॥ अंगोछा १ दांतण २ फल ३ अभि-ङ्गन ४ । उवटण पीठी ५ ने मज्जन ६ । वस्त्र ७ विले-पन ८ पुष्प ९ आभरण १० । धूपखेवण ११ पीवण १२ ने भक्खन १३ ॥ १ ॥ उदन १४ सूप १५ विगय १६ साग १७ विमास । मद्धूर १८ जीमण १९ । पाणी २० मुख वास २१ । वाहन २२ । सयन २३ । पन्नी २४ ।

सचित २५ । द्रव्य २६ । संख्या करित्यागे एक चित्त ॥२॥ एकवीस बोलतणूं प्रमाण । धन्य त्यागे ते समता आण ॥ नाम लेई विवरो करलीजे । करण जोग घाली व्रत कीजे ॥ ३ ॥ ए छाइस बोल भोगवियां संताप । भोगायां पिण लागै छे पाप ॥ अनुमोदियां धर्म किहां थी होय । तीनूं ही करण सरिषा जोय ॥ ४ ॥ मूर्ख रे दिल वात न वैसे । न्याय छोड़ि झगड़ा में पैसे ॥ सुगुरू छांडी कुगुरू से परिचा । भारी हुवे करे झंधी चरचा ॥५॥ व्रत अव्रत कहि जिन न्यारो । समझै नहीं तिणरे कर्म भारो ॥ मूढ मती नव तत्त्व न जाणे । लीधी टेक छोडे नही ताणे ॥ ६ ॥ छव्वीस बोल तणूं आगार । तेतो अव्रत आस्रव द्वार ॥ त्यांमे कोई उप-भोग परिभोग । त्यांनें भोगवे ते तो सावद्य जोग ॥७॥ त्यांरो त्याग करै मन समता आण । शक्ति सारू करै पच्चखाण ॥ एक करण तीन जोगां से त्यागे । जब पोते भोगणरो पाप न लागे ॥८॥ दोय करण तीन जोगांसें पच्चखाण । तिण छः भांगारो पाप टल्यो जाण ॥ तेतो पोतै पिण भोगवे नहीं कांय । दूजा नें पिण भोगावे नही ताय ॥९॥ तीन करन तीन जोगां से त्यागे । तिणनें नव ही भांगारो पाप न लागे । भोगवे नही भोगावे नाहीं । भोगवणा वाला नें सरावे नहीं ताही

॥१०॥ जो जे सेरी छूटी रही रहाई। तिण से पाप कर्म लागे छे आई॥ जे सेरी रुकी रूंधर द्वार। तिणसे पाप न लागे लगार॥११॥ छूटी सेरी में श्रावक खावे खुवावे। खातांने पिण छूटी सेरी में सरावे॥ रुकी सेरी में खावे खुवावे नांहीं। अनुमोदना पिण न करे काहीं ॥१२॥ श्रावकने मांहो मांहि छकाय खुवावे बलि छकाय मारीनें जीमावे॥ ए अव्रत सावद्य जोग व्यापार। तिण मांहि धर्म नहीं छे लिगार ॥१३॥ श्रावक ने मांहो मांहि छकाय खुवावे बलि छकाय मारी ने जिमावे॥ तिण मांहि धर्म मिथ्यात्वी जाणें। कर्म तणें बश ऊंधी ताणें॥१४॥ व्रत आंश्री श्रावकनें कह्यो छे धर्मी। अव्रत आंश्री कह्यो अधर्मी॥ तिणसूं श्रावक नें धर्माधर्मी जाणो। पन्नवणा भगवती से जोय पिछाणो॥१५॥ श्रावक रो खाणो पीणूं ने गहणूं। मांहो मांहि लेणूं नें देणूं॥ ए तीनूं हीं करण अव्रत में घाल्या। उववाई सुयगड़ा अंग में चाल्या ॥१५॥ शब्द रूप रस गंध स्पर्श। राख्या छे तिणरी लग रही आशा॥ एह ही उपभोग परिभोग। तिणरा मिले छे विधि संयोग ॥१७॥ राख्या छे तिणरी अव्रत जाणो। तिणरो समय समय पाप लागे छे आणो॥ त्यांनें त्याग्यां होसी

संबर सुखदाय। तिणसे अबृतरो पाप मिटजाय ॥१८॥
उपभोग परिभोग भोगवै छे जाणि। तिणसूं पाप लागै
छे आणि ॥ भोगायां सें दूजे करण पाप। तिणसूं
होसी बहोत संताप ॥१६॥ अनुमोदे तेसरावै जाण।
तिणसें पिण पाप लागै छे आण॥ श्रावकरा उपभोग
परिभोग। ए तीनूं करणा छे सावद्य जोग ॥२०॥

॥ भावार्थ ॥

सातमां व्रत में छब्बीस बोलोंकी मर्यादा करिके उपभोग परिभोग के त्याग करे वो व्रत हैं आगाए रक्खा सो अव्रत हैं, सो छब्बीस बोल कहते हैं। उलणिया विहं अर्थात् अंगोछादिनीं विधि १ दंतण विहं अर्थात् दंत पखालणे की २, फल विहं अर्थात् फल आम्र दाड़िम केला आदिकी विधि ३, अभिंगण विहं अर्थात् मर्द्दन तेल मालिस विधि ४, उवट्टण विहं अर्थात् उवट्टणां पीठी आदिकी विधि ५ मंजन विहं अर्थात् स्नान विधि ६ वत्थ विहं अर्थात् वस्त्रको विधि ७, विलंवन विहं अर्थात् चन्दनादिका विलेपन विधि ८, पुप्फ विहं अर्थात् पुष्पकी विधि ६, आभरण विहं अर्थात् आभूषण गहणां जेवर आदि की विधि १०, धूप विहं अर्थात् धूप अगरादि खेवणें को विधि ११, पेज विहं अर्थात् धूप आदि पीवणें की विधि १२, भक्खन विहं अर्थात् खाणें की विधि १३, उद्दन विहं अर्थात् चांवल आदि धानकी विधि १४, सूर विह अर्थात् दाल की विधि १५, विगय विहं अर्थात् घृत गुड़ आदि पट विगय की विधि १६, साग विहं अर्थात् साग तरकारी की विधि १७, मऊर विहं अर्थात् मधुर सेलड़ी आदि का फल मेवादि को विधि १८, जम्मण विहं अर्थात् जीमणे की विधि १६, पाणी विहं अर्थात् पानी उदक की विधि २०, मुखवास विहं अर्थात् लवंग सुपारी एलायची आदि की विधि २१, वाहण विहं अर्थात् गाड़ी वग्गी आदि सवारी की विधि २२,

सयण विहं अर्थात् पाट वाजोट कुरसी मेज विछावणा आदि की विधि २३, पन्नो विहं अर्थात् पगरखी आदि को विधि २४, सचित विहं अर्थात् सचित ते जीव सहित पृथिव्यादि की विधि २५, द्रव्व विहं अर्थात् द्रव्य ते अनेक प्रकार से खाणे पीणे की सर्व नाम की वस्तुवों की विधि २६, उपरोक्त छव्वीस बोलों को समता ल्यके त्यागें उन्हें धन्य हैं, प्रमाण रखके मर्याद उपरान्त विधि सहित करण जोग करिके देशतः त्यागन करे वो श्रावक का सातमा व्रत है, तथा यह छव्वीस बोलों का त्याग न करे अथवा जितना जितना आधार रक्खा हो वो अव्रत आस्रव द्वार है जिससे पाप कर्म लगते हैं आप भोगें सो पाप दूसरे को भोगावे जिस में भी पाप है क्योंकि वो दूसरा करण है और भोगते हुए को भला जानें वो तीसरा करण है उसमें भी पाप कर्मोपार्जन होते हैं, परन्तु मुर्ख मानव के दिलमे ए बात एकाएक जचना महा मुश्किल है वो लोग न्यायकी तरफ दृष्टि न देकर उलटे लड़ने लग जाते हैं इसका कारण सुगुरुओं को छोड़के कुगुरुओंका परिचय है, किन्तु न्यायाश्रयी और सम्यद्दृष्टि जीव तो अच्छी तरह से जानते हैं कि श्रावक के जिस कार्य में पहिले करण पाप हैं तो दूसरे और तीसरे करण में धर्म कदापि नही हो सकता है, श्रावक का खाना पीना पहरना ओढ़ना आदि सब कार्य अव्रत में हैं ऐसा पाठ खुलासा श्री उववाई तथा सुयगडांग सूत्र में है श्रावक को व्रत आश्रयी धर्मी और अव्रत आश्रयी अधर्मी श्री पन्नवणा भगवती सूत्र में कहा है इसही लिये श्रावक को धर्मी अधर्मी तथा व्रताव्रती कहा है, विवेको जीवों को विचारणा चाहिये कि जो जो शब्द रूप गंध स्पर्श उपभोग परिभोग आगार रक्खा है जिन्हों को आशा वान्छा लाग रही है उनका संयोग वियोग करता है वो प्रथम करण से अव्रतास्रव है उससे पाप लगता है दूसरे को भोगता है जिससे द्वितीय करण और भोगने वाले की अनुमोदना करता है जिससे पाप लगता है। अर्थात् भोग उपभोग के तीनूं करण सावद्य जोग है इनका त्याग करने से श्रावक के व्रत संबर होता है।

॥ढालतेहिज॥

जघन्य मज्झम उत्कृष्टा जान। श्रावक गुण रतनां री खान ॥ त्यांरो खाणूं पीणूं अव्रत मे जाणो। तिण ने रूडो रीत पिछाणो ॥ २१ ॥ जघन्य श्रावकरे अव्रत घणोरी। उत्कृष्टा श्रावकरे अव्रत थोड़ेरी ॥ पिण ते अव्रत आस्रव पापरो नालो। तिणसे पाप आवे दगचालो ॥ २२ ॥ श्रावक तप करे आणि हुलास उपवास वेलादिक करे छमास ॥ सावद्य जोग रूंध्यां संवर हुवे रूड़ो। तपसे कर्म करे चकचूरो ॥ २३ ॥ तप पूरो हुवा पछे अव्रत आगार। खावो पीवो ते सावद्य जोग व्यापार ॥ तिणसे कर्म लागे छे आय। ते पाप होसी जीवने दुःखदाय ॥ २४ ॥ पारणूं करे ते पहिले करण जाणो। करावे ते दूजे करण पिछाणो ॥ सरावण वालो छे तीजे करणो। यां तीनांरो बुद्धि-वन्त करसी निरणो ॥ २५ ॥ पहिले करण तो पाप बंधावे। तो दूजे करण धर्म किहां थी थावे ॥ तीजे करण धर्म नहीं छे लिगार। यां तीनांरा सावद्य जोग व्यापार ॥ २६ ॥ सावद्य जोगां से लागे छे पाप। तिणसूं जिन आज्ञा न दे आप ॥ जो श्रावक ने जिमायां धर्म होता। तो अरिहन्त भगवन्त आज्ञा देता ॥ २७ ॥ कोई कहे श्रावक ने जिमायां धर्म। ते भूल

गया अज्ञानी भ्रम ॥ पोते पिण जीम्यां लागे पाप कर्म। तो औरां ने जिमायां किम होसी धर्म ॥ २८ ॥ कोई कहै लाडू खवायां धर्म। वो तप करै तिणसे म्हांरा कटसी कर्म ॥ तिणसे म्हे ओरांने लाडू खवावां। लाडूवां साटे म्हे उपवास करावां ॥ २९ ॥ पाछै तो वो करसी सो उणने होय। पिण लाडू खवायां धर्म नहीं कोय ॥ लाडू खवायां तो एकान्त पाप। श्रीजिन मुखसे भाख्यो छै आप ॥ ३० ॥ श्रावक ने लाडूड़ा खवायां धर्म जो होय। तो एहवो धर्म करै हरकोय ॥ बड़ा बड़ा श्रावक हुवा धनवंत। इम लाडू खवाइने धर्म करंत ॥ ३१ ॥ बड़ा बड़ा सेनापति ताहि। त्यारै हुंती घणी धर्मरी चाहि ॥ खवायां धर्म हुवै तो आघो नाहीं काढ़ता। लाडू खवाई काम सिरारे चाढता ॥ ३२ ॥ जो श्रावक ने लाडू खवायां धर्म। खवावण वाला रै कट जाय कर्म ॥ तो चक्रिवर्त वासुदेव बल-देव। यो तो धर्म करता स्वमेव ॥ ३३ ॥ लाडू खवायां होवै जो धर्म। श्रावक ने लाडू खुवायां कट जाय कर्म ॥ तो च्याकंही जातिरा देव स्वमेव। एहवो धर्म करै तत खेव ॥ ३४ ॥ जो एहवा धर्म थी शिव सुख होय। तो देवता आघो न काढता कोय ॥ एहवो धर्म करी पूरता मन खांत। देव भवथी पाधरा

मोक्ष पोहचंत ॥ ३५ ॥ पिण लाडूड़ा खवायां तो धर्म छै नाहिं । खाणों खवावणों अव्रत मांहि । इण मांहि धर्म श्रद्धे ते भोला । त्यांरै मोह कर्म नां हेरे झकोला ॥ ३६ ॥ लाडू खवायां धर्म नहीं छै भाई । यातो उघाड़ी दीसै चिकनाई योतो लोलपणों जिह्यारो स्वाद । पिण भारी कर्मां मांडोरे ए वाद ॥ ३७ ॥ खाणूं खवावणूं त्यागै सोय । जब सातमूं व्रत श्रावक रे होय । जब रुकसी ते आवता कर्म । तेहिज उजलो संवर धर्म ॥ ३८ ॥ तीनूं हीं करण जुवा २ कीजे । त्याग अनें आगार ओलखीजे । अव्रत मे पाप जाणि छोडीजे । व्रत मे धर्म जाणी व्रत लीजे ॥ ३९ ॥ मानव भवरो लाहोलीजे । दान सुपात्रने निश्चय दीजे धर्मनूं कारज बेगो कीजे । सतपुरुष सेयां वांच्छित सीजे ॥ ४० ॥ इति ।

॥ भावार्थ ॥

जघन्य मध्यम और उत्कृष्ट ए तीन प्राकार के श्रावक कहे हैं वे श्रावक व्रतमयी रत्नों की खान है, जितने २ त्याग हैं वो व्रत अमूल्य रत्तन है तथा जो जो आगार रक्खा है और खाते पीते हैं वो सब अव्रत हैं वो रत्न नहीं हैं वो तो निर्मूल्य काच है अपणे पास रखणे से भी काच और निरधन पणाँ है, दूसरे को देने से भी काच और निरधन पणां ही है, जो व्रतमयी रत्न सो अपणे पास में भी रत्न है तथा जिससे सर्व कार्य सिद्ध होते हैं और दूसरे को व्रत कराणे से उसको भी अमूल्य रतन देना है जिससे उसके भी कार्य सिद्ध होते हैं अर्थात् जो

जो त्याग हैं वो धर्म है जो जघन्य श्रावक है उसके अव्रत बहोत हैं उत्कृष्ट श्रावक है उसके अव्रत थोड़ी है अव्रत है सो आस्रव द्वार है याने परनाला है जिसमे होके पापमयी पानी आता है उसको बंध करने से चारित्रमयी निज गुणोत्पन होता है, उपवास बेला तेला षट्मास आदि तप करने से खाना पीनादि सावद्य जोग रूधते है वो व्रत सवर है तथा भूख तृषादि समपरिमाणामों से सहन करता है जिससे अशुभ कर्म क्षय होता है सो निरजरा है तप पूरण हुए से जिस २ वस्तुवों का भोगोपभोग करने का आगार है वो भोगता है खाता है पीता है अनेक तरह के सावद्य जोग व्यापार करता है जिससे पाप कर्म लगते हैं वो जीवको दुःखदायी है, पारणा किया सो प्रथम करण दूसरे का पारणा कराया वो दूसरा करण है ऐसे ही अनुमोदना अर्थात् अच्छा जानना सो तीसरा करण है, इनका निर्णय बुद्धि-वान जन सहज में कर सकते हैं विचारणा चाहिये कि प्रथम करण में पाप है तो द्वितीय और तृतीय करण में धर्म कैसे होगा, तात्पर धारणा पारणा करणे वाला सावद्य जोग सेता है और उसकी जिन आज्ञा नही है अधर्म है तो धारणा या पारणा कराणे वाले को धर्म किस तरह होगा यदि खिलाने मे धर्म है तो खाने में भी धर्म है जो खाने में धर्म नहीं है तो फिर खिलाने में भी धर्म नहीं है क्योंकि अधर्म कराने से धर्म कैसे होगा, इस लिये ही श्रावकको खाना खिलाना अनुमोदना इन तीनूं करणों की श्रीजिनेश्वर की तथा साधू मुनिराजों की आज्ञा नहीं हैं यदि आज्ञा होती तो अब साधू मुनिराज श्रावक के खाना खिलाना और अनुमोदने की आज्ञा क्यों नहीं देते परन्तु शुद्ध निग्रन्थ साधू तो आज्ञा नही दे सकते हैं और इस सावद्य कार्य को मन वचन काया करिके अच्छा भी नहीं जानते हैं, जो कोई श्रावक को जिमाने में धर्म जानते हैं वो अज्ञान हैं उनके मोह कर्म की छाक बहोत है इसलिये अनादि कालसे खाना और खिलाने को अच्छा समझ रहे हैं, समदृष्टि मनुष्य के तो खाना और खिलाने का त्याग करणे से

सातमा व्रत होता है, इसलिये सतगुरुवो का कहना है व्रत अव्रतको यथार्थ उलखना करिके अव्रत को छोड़ व्रत अंगीकार करो अव्रत मे अधर्म और व्रत में धर्म समझो ए मनुष्य भव पाने का लाह ल्यो कुगुरुवों को छांड़करि सुगुरुवों को सेवो और सुपात्र दान दो धर्म कार्य जल्द करो जिससे जीवका भला होगा।

॥ इति सप्तम् व्रत भावार्थ ॥

अथ पंदरह कर्मादान

दोहा--उपभोग परि भोगनूं। सातमूं व्रत प्रधान।
तिण मांहो उपदेशिया। पंदरह कर्मादान॥ १॥

॥ ढाल चाल तेहिज ॥

ईंट लोहाला सोनार ठटारा। भढभूंज्या कुम्बकार लोहारा। ए कर्म करीने पेट भरीजे। तेह अंगालिक कर्म कहीजे॥ १॥ वेचैं साग भात कंदमूल। फल बीजादिक धानने तंदूल। वेचैं फूलादिक सर्व वनराई। ते वण कर्म कहीजेरे भाई॥ २॥ वेचैं गाडादिक रथ कराई। चाकी पाट पलंग बणाई। किंवाड थंभादिक ते वेचावे। ए तीजो साडी कर्म कहावे॥ ३॥ हाट हवेली भाडे थापे। रोकड नाणूं व्याजें आपे। गाडादिक भाडे दे जेह। भाडी कर्म कहिजे तेह॥ ४॥ वेचैं नालेरादिक फोडी। वलि आखरोट सोपारी तोडी। पत्थर फोड दले पीसे धान पांचमूं फोडी कर्मादान॥ ५॥ कस्तूरी केवडा गज

हन्ता। मोती अगर पाप अनन्ता। चर्म हाड सींग जो हार। छट्ठो कर्मादान ए धार ॥ ६ ॥ सातमूं भेद मैण सल आल। बेचै लाख गुली हरिताल। कसूंबादिक रांगण पास। दोष घणो कह्यो जिन तास ॥ ७ ॥ मधु मांस मांखण ने दारू। भारी विगय कही जिन च्यारू' दूध दही घृत तेल-गुड़ जाण। आठमूं ए रस वाणिज्य पिछाण ॥ ८ ॥ बेचैं ऊंट गधा बैल गाय। घोड़ा हाथी भैंस मंगाय। ऊन रूई रेशम थान बणाय। केश वाणिज्य ए नवमूं थाय ॥ ९ ॥ सींगी मोरोने आफू सार। लीलो थूथो सोमल खार। हरबंसी नर बंसी विणजै। ए दशमूं विष वाणिज्य कहिजै ॥ १० ॥ तिल सरस्यूं प्रमुख पिलावै। इक्षू रसनां घाण करावै। जन्त पीलण इग्यारमूं कर्म। करतां बधे घणो अधर्म ॥ ११ ॥ कान फड़ावे नाक विंधावै। पापी कासिया बैल करावै। बारमूं कर्मादान निलंछन। व्रत धारी ने लागै लंछन ॥ १२ ॥ बालै गाम नगर करि लाय। अटव्यादिक में दव दे लगाय ॥ बालै सूरडाने दव आपै। तेरमूं कर्म इसी पर व्यापै ॥ १३ ॥ चवदमूं भांजै नदीं द्रह तीर। खेतमांहि आणी घालै नीर ॥ सर द्रह तलाव वूरै सोषंत। एकर्म करी जीव नरक पडन्त ॥ १४ ॥ साधु बिना सघलो पोषीजे। पन्नरमूं

असंजती पोष कहिजे ॥ रोजगारसे त्यां ऊपर रहवे । खाणूं पीणूं असंजती ने देवे ॥ १५ ॥ ए पन्दरह कर्मादान विस्तार । मर्याद बांधि करे परिहार ॥ ए पन्दरह कह्या सावद्य जोग व्यापार । करे आजीवका चलावण हार ॥ १६ ॥

॥ इति सप्तम् व्रतम् ॥

॥ भावार्थ ॥

उपभोग परिभोग के त्याग करे सो सातमा व्रत कहा जिसमें पंद्रह कर्मादान कहे सो कहते हैं अंगालि कम्मे १ अर्थात् अंगालिक कर्म ईंट कोला कली चूना भट्टी वगैरह में बनाना तथा सोनारका काम ठठेरेका काम भड़भूंजा का काम लोहारका काम तथा कोयला आदि अग्नि द्वारा काम करना उसे अंगालिक कर्म कहते हैं। वणकम्मे २ अर्थात् वनस्पति हरी नीलोती साग पात फल फूल का काम करना तथा वेचना। साडिकम्मे ३ अर्थात् साटी कर्म काष्ट का गाडा रथ चौकी तखते पर्यंक कपाट स्थम्भ आदि लकड़ी की अनेक वस्तुओं को बना बनाके वेचना। भाडी कम्मे ४ अर्थात् भाड़ाकर्म दुकान मकान जमीन गाडा गाडी प्रमुख को भाड़े देना तथा रोकड़ रुपयादि को व्याजू देना। फोडी कम्मे ५ अर्थात् तोड़ने फोड़ने का काम नारेल सोपारी आखरोट पत्थर आदि को तोड़ तोड़के वेचना तथा अनाज को दलना पीसना आदि। दंत वणिज्जे ६ अर्थात् दन्तादि का व्योपार—कस्तूरी केवड़ा गज दन्त मोती चमड़ा हाड़ आदि का व्यापार। लख्ख वाणिज्जे ७ अर्थात् लाख आल मोम खगुली हरिनाल आदिका व्यापार। रसवाणिज्जे ८ अर्थात् घृत गुड़ तैल दूध दही तथा मदिरा मांस माखण सैत आदिका व्यापार। केश वाणिज्जे ९ अर्थात् केशोंके निमित्त ऊंट गधा गाय बैल घोड़ा हाथी आदि का व्यापार। विष वाणिज्जे १० अर्थात् विषका व्या-

पार-सींगी मोरा अमल आक पोस्तडोडी लीलाथूता सोमलखार हरवंसी नरवंसी आदि विषका वाणिज्य। जंत पिलणियां कम्मे ११ अर्थात् जंत्र घाणी कल मशीन आदि में तिल सरसूं प्रमुख को पीलना पिलाना तथा सांटा आदि का घाण कढवाना। निलच्छन कम्मे १२ अर्थात् कान फडाना नाक विंधाना तथा वलद प्रमुख को वाद्दी करना। दवग्ग दावणिया कम्मे १३ अर्थात् ग्राम नगर अटवी आदि में अग्नि लगाना सर दह तलाव सोषणियां कम्मे १४ अर्थात् सरद्रह तलाव नदी प्रमुख को वूरना सोषंत करना या नाळा मोरी को खोलनादि। असईजण पोष-णियां कम्मे १५ अर्थात् असती जन ते असंजती को पोषणे का काम साधु विना सब को पोषना तथा असंजती जीवों को पोषने के निमित्त रोजगार लेके रहना। उपरोक्त पन्द्रह कर्मादान कहे सो सर्व कर्म बंधन के कारण है यह श्रावक को छोड़ने योग्य हैं परन्तु आदरणे योग्य नहीं है गृहस्थ से न छोडे जाय तो इनकी मर्याद करिके उपरान्तके त्याग करै सो व्रत है आगार रक्खा सो अव्रत है जिससे पाप कर्म लगते हैं।

॥ इति सप्तम् व्रत भावार्थम् ॥

॥ अथ अष्टम् अनर्थ दंड परिहार व्रत ॥

॥ दोहा ॥

सातमूं व्रत पूरो थयो। हिव आठमानूं विस्तार
अर्थ अनर्थ ओलखवा भणीं। तेहनूं सुणों विचार ॥१॥
सातव्रत आदरतां थकां। बाकी अव्रत रही छे ताय ॥
तिणसे निरन्तर जीवरै। पाप लागी छे आय ॥ २ ॥
तिण अव्रतरा दोय भेद छे। तिणमें एक अनर्थ दण्ड जाण ॥ दूजी अव्रत अर्थ दण्ड तणों। त्यासूं पाप लागै छे आण ॥३॥ अर्थ ते मतलब आपरै। सावद्य

करै विविध प्रकार ॥ अनर्थ ते मतलब बिना। पाप करतां डरै न लिगार ॥४॥ पाप करै अर्थ अनर्थ कारणें। त्याने रूडी रीत पिछाण ॥ अर्थ दंड छोडणुं दोहिलो। पिण अनर्थरा करै पचख्खाण ॥५॥ अनर्थ डंड तणां भेद अतिघणा। ते पुरा कह्या न जाय ॥ थोडासा प्रगट करूं। ते सुणिजो चित्त लयाय ॥६॥

॥ भावार्थ ॥

अब आठमां व्रतमें अनर्थ दण्डके परिहार करणे की विधि बताते हैं पूर्वोक्त सातव्रत आदरते जो अव्रत रही उसमे जीवके निरन्तर पाप लगते हैं जिसमें एक तो अर्थ दूसरा अनर्थ, अर्थ तो अपने मतलबके लिये और अनर्थ विना मतलब सावद्य जोग वर्ताना, ग्रहस्थसे यदि अपने मतलबके लिये पाप करनेका त्याग न हो सके तो विना मतलब पाप करनेका त्याग तो अवश्य करना चाहिये जिसमें अनर्थ दंडकी अव्रत मिटै, अनर्थ पाप अनेक तरह से होता है परन्तु यहां अलपसा वर्णन करिके कहते हैं।

॥ ढाल चाल तेहिज ॥

पहिलो भेद कह्यो अपध्यान। तिणथी बांधे अनर्थ खान ॥ बीजो भेद प्रमादज आखे। घृतादि ठाम उघाड़ा राखे ॥ १ ॥ शस्त्र जोड करै बिस्तार। पाप उपदेश देवै विविध प्रकार ॥ ए अनर्थरा करै पचख्खान। सूधो पाले जिनवर आण ॥ २ ॥ अनर्थ दण्ड केम कहिजे। अर्थ दण्ड सेती उलखीजे ॥

तेहना भेद विविध प्रकार । संक्षेप मात्र कहूं विस्तार ॥ ३ ॥ माठा ध्यानरा दोय प्रकार । जे जगमें ध्यावे नरनार ॥ आर्त रौद्र ध्यान ध्यावे लोग ॥ पामें विविध हर्ष ने सोग ॥४॥ शब्दादिक इन्द्रियां नां भोग । तेहनूं वंछे संयोग वियोग ॥ रोगादिक लागे अणगमता । भोग भोगवतां लागै गमता ॥५॥ इणविधि जीव रचै ने विरचै । आप अर्थ कुटुम्ब ने परिचै ॥ ठाकुर चाकर सगा स्नेही । बोहराने धुरया आदि देई ॥६॥ जिण सुखिये सुख वेदै आप । तिण दुःखये पामैं सोग संताप ॥ ते पिण टाले समता आण । अनर्थ ध्यावारा पचखाण ॥७॥ रौद्र ध्यान हिन्सा जे ध्यावे । झूंठ चोरी बंदीखान दिरावै ॥ अर्थ करै पिण धूजे तन्न । अनर्थ ध्यान तजे एक मन्न ॥८॥ घृतादिक पिण विणज करतां । धूमादिक कारज अण सरतां । इण विधि अर्थ उघाडा राखे त्हाई । तिण रा जतन करै चितल्याई ॥ ९ ॥ प्रमादनै वश आलस आण । उघाड़ा राखण रा पच-खखाण । घरटी ऊखल मूसल राखै । म्हारै सरै नहीं इण पाखै ॥ १० ॥ अनर्थ राखण रा पचखाण । एहवो व्रत करे मन जाण । अर्थे पिण राखन्ता शंकाय अनर्थ पिण नहीं राखै त्हाय ॥ ११ ॥ भाई भतीजा

चाकर पेख। त्यांनि दे पापरा उपदेश। खेती वाणिज्य सोदा करो भाई। यु' वैठा खासो किणरै कमाई ॥ १२ ॥ बुद्धिवन्त नर ज्ञान से देखे। कहिता लागे पाप विसेख। तो अनर्थ कुण घरमे घाले॥ तिण थी कर्मज मैला आले ॥ १३ ॥ जश कीर्ति मान बड़ाई काजे। वलि शरमा शरमी लोकारी लाजे। बलि घर उदारणारे ताई। हिन्सादि करे ते अर्थ दण्ड माही ॥ १४ ॥ जिण कर्तव्य कियां करे लोक भण्ड। ते कर्त्तव्य छे अनर्थ दण्ड। छ कुंडा राखी ते अर्थ दण्ड मांही। त्यांरे काजे हिन्सादि करै छे ताहि ॥१५ ॥

॥ भावार्थ ॥

आत्मा दो प्रकार से दण्ड पाती है, एक तो अर्थ दूसरा अनर्थ करि के पाप लगता है जिस अनर्थ दण्ड के च्यार भेद हैं—अपध्यान १ हंस-पयाणं २ प्रमाद ३ पाप कर्मका उपदेश ४ ए च्यार प्रकार से जीव दण्डित होता है, अपने मतलब से करै सो अर्थ दण्ड है और विना मतलब करै वो अनर्थ दण्ड है, अब उपरोक्त च्यारूं भेदों का संक्षेप से वर्णन करते हैं—अपध्यान के दो भेद एक तो आर्तध्यान दूसरा रौद्रध्यान, शब्दादिक पंच इन्द्रियों की तेवीस विषयकी इच्छा करना प्रिय वस्तुवों के संयोग की वान्छा करना और अप्रिय वस्तुवों का वियोग वंछना, निरोग्यता सुख साता से खुशी और सरोग्यता असाता से नाराज होना सो आर्त्तध्यान है, परजीव की हिन्सा वंछना झूठ बोलना दूसरेको दुःख देना कैद करनादि वाछे सो रौद्रध्यान है, यह प्रथम भेद कह्या। हिन्सा में प्रवर्त्तना शस्त्र को जोड़ना तीखा करना यह दूसरा भेद है, प्रमाद वश होके घृत के तेल आदिके वरतनों को उघाड़ा रखना जिससे

अनेक जीवों की हिन्सा होय तथा चक्की ऊखल मूसल जंत्र आदिको देखे बिना चलाना सो तीसरा भेद है। और पाप कर्म करने का उपदेश जैसे भाई भतीजा आदि दूसरे को कहना बैठे बैठे क्या करते हो खेती करो कूवा तालाव खोदो वाणिज्य व्यापार करो आदि अनेक तरह से पाप का उपदेश देना ये चौथा भेद जानना। उपरोक्त ये च्यारूं प्रकार से अपने अर्थ करै सो अर्थ दण्ड और विना अर्थ करै सो अनर्थ दण्ड है, अपणी बड़ाई सोभाके निमित्त तथा अभिमान के वश या शरमां शरमी लोकों की लाज से स्वार्थ वश होके उपरोक्त च्यारूं के करने से पाप लगता है परन्तु वो तो अर्थ दण्ड है, विना मतलव वा जिस कर्त्तव्य करने से लौकिक में निन्दा हो सो अनर्थ दण्ड है, इस लिए श्रावक को अनर्थ दण्ड करने का त्याग करना चाहिये तथा अर्थ दण्ड काभी मर्याद उपरांत परिहार करना वाजब है, श्रावक अर्थ दण्ड का या अनर्थ दण्ड का त्याग किया सो व्रत है आगार रक्खा सो अव्रत है।

॥ ढाल तेहिज ॥

सुयगडा अंग अध्ययन अठारमां मझार। अनर्थ रा आठ कह्याछे आगार। आत्मा न्यातीलारे काम। हिन्सा-दिक करै छे ताम ॥ १६ ॥ आधार ते घर हाटादिक काम। परिवारने दास दासी नाम। मंत्री नाग भूत यक्ष देव। त्यांरे निमित हिन्सादि करै स्वमेव ॥ १७॥ यहलोकने परलोक। जीवणूं मर्णूंने काम भोग। यांरे अर्थ वान्छा क्रिया पाप लागै। अनर्थ कियां आठमूं व्रत भागै ॥ १८ ॥ असंयती जीवां रो जीवणूं चावै। असंयती

जीयां से हर्षित थावे। अर्थे वंछ्यां तो अर्थ पाप लागे। अनर्थ वंछ्यां आठमूं व्रत भागे॥ १९॥ असंयतीरो मरणूं चावे। अथवा त्यांने मारे मरावे। अर्थे मार्‌यां मरायां पाप लागे। अनर्थ मार्‌यां मरायां व्रत भागे॥ २०॥ ग्रहस्थि ने काम भोग भोगायवो चावे। अथवा त्यांने काम भोग भोगावे। अर्थे भोगायांथी पाप लागे। अनर्थे भोगावियां व्रत भागे ॥ २१॥ ग्रहस्थि ने उपभोग परिभोग भोगावे। तिण निश्चय पाप कर्म बंधावे अर्थे भोगायां तो अर्थ पाप लागे। अनर्थ भोगायां आठमूं व्रत भागे॥ २२॥ ग्रहस्थिरो काम करे अंश मात। तिणरे निश्चय पाप लागे साक्षात। अर्थे कियां तो अर्थ पाप लागे। अनर्थ किया आठमूं व्रत भागे॥ २३॥ कहि कहि नें कितनूं हूक कहुं। अर्थ अनर्थ दण्ड छे वेहु। तिण मे अर्थरो अव्रत राखी छे जांण। अनर्थ दण्ड तणां पचखाण॥ २४॥ याने रूडी रीत पिछांणी लीजे। करण जोग धाली व्रत कीजे। यामें रूकी सेरी तिण मांहि धर्म। छुटी सेरी तेहिज अधर्म ॥ २५॥ आठमां व्रतरो बहोत विचार। यो अल्प मात्र कियो विस्तार। हिव नवमूं व्रत कहुं छूं ताय। सांभलज्यो भवियण चितल्याय ॥ २६॥ इति।

॥ भावार्थ ॥

सुयगड़ा अङ्ग सूत्र मे अनर्थ दण्ड के आठ प्रकार के आगार श्रावक के कहा है—आयहिउवा १ अर्थात् अपणी आत्मां के हेतु, नाए हेउवा २ अर्थात् न्यातीलों के हेतु, आघारे हेउवा ३ अर्थात् अपणों घरके हेतु, परिवारे हेउवा ४ अर्थात् परिवार पुत्र पौत्रादि तथा दास दासी के हेतु, मित्तहेउवा ५ अर्थात् मन्त्री के हेतु, नाग हेउवा ६ अर्थात् नाग देवता के हेतु, भूए हेउवा ७ अर्थात् भूत के हेतु, जख्ख हेउवा ८ अर्थात् यक्ष के हेतु, ये आठ प्रकार के आगार उपरांत श्रावक के अनर्थ दण्ड के त्याग हैं सो आठमां व्रत है, व्रत है सो ही धर्म है, आगार रख्खा सो अव्रत है अपणी कचाई है, किन्तु अपणी आत्मा के निमित्त यावत् यक्ष निमित्त जो जो हिन्सादि करता हैं उस में धर्म नहीं है, इहलोक परलोक जिवितव्य मरण काम भोग इन पांचूं की वन्छनां अपणें मतलब के लिए करने से पाप लगता है और विना मतलब किये आठमां व्रत का भङ्ग होता है, ऐसे ही असंयती जीवो का जीवणा मरना अपणें अर्थ के लिये वांछने से पाप कर्म का बन्ध होता है और विना अर्थ वांछने से अष्टम व्रत खण्ड होता है, गृहस्थि को काम भोग भोगने की इच्छा अपणें स्वार्थ के लिए करे या भोगावे तो पाप, विना स्वार्थ गृहस्थि को काम भोग भोगावै तो आठमां व्रत का भङ्ग, तात्पर गृहस्थि का अंश मात्र काम करना कराना अनुमोदना इन तीनूं करणों में पाप है श्रावक करता कराता है :सो धर्म नहीं है सांसारिक व्यवहार है। धर्म तो वोही है कि जितने २ त्याग हैं। स्वामी भीखनजी कहते है कि अब कहि कहके कितना कहूं अर्थ और अनर्थ इन दो प्रकारों से पाप लागता है इस लिए श्रावक के अनर्थ पाप करने का त्याग आठमां व्रत में है, इस आठमा व्रत को अच्छी तरह समझ के यथाशक्ति करण योग युक्ति त्याग करना चाहिए जिसमें अपना व्रत भंग न हो जो सेरी रुकी है सो धर्म है नहीं रुकी वो अधर्म है ॥ इति ॥

———

॥ अथ नवमां व्रत ॥

॥ दोहा ॥

पांच अणूँ व्रत पालतां। गुण व्रत देश कहाय। शिखा व्रत च्यारूं चोकडी। कहै उपमा ल्याय ॥ १ ॥ जिम देवल कलशी चढे। मुकुट मस्तक अंत। इम समदृष्टि जीवड़ा, शिखा व्रत पालंत ॥ २ ॥ व्रत आठूं पहिली कह्या, जाव जीव लग जाण। शिखा व्रत च्यारूं तणां विविध पणें पचखाण ॥ ३ ॥ सामायक मुहूर्त एक नौं, जो करै चित ल्याय। देशावगासी व्रतना, जेम करै तिम थाय ॥ ४ ॥ पोसो हुवे दिन रातरो, ध्यावै निरमल ध्यान। बारमूं व्रत शुद्ध साधुने, प्रतिलाभ्यां थी जान ॥ ५ ॥

॥ भावार्थ ॥

पांच अणू व्रत अर्थात् महाव्रतों से छोटे, तीन गुण व्रत याने पंच अणूं व्रतों को गुण दायक ए आठ व्रत तो कहे अब इन व्रतों के शिखा समान च्यार शिखा व्रत कहते हैं, जैसे मन्दिर के कलशा और मस्तक के मुकुट है वैसे ही आठूं व्रतों के ये च्यार व्रत है, पहले व्रत से आठमां व्रत तक के त्याग तो जावज्जीव पर्य्यंत होते है किञ्चित् काल के नहीं होते और इन च्यारूं व्रतों में प्रथम व्रत तो एक महूरत का हैं, दूसरा जितना काल के करें उतनां हीं काल का होता है, तीसरा दिवस रात्रि प्रमाण होता है, और चौथा शिखा व्रत शुद्ध साधू मुनिराजों को निर्दोष आहार पानी आदि चवदह प्रकार का दान देने से होता है, जिस में प्रथम शिखा व्रत कहते हैं।

॥ ढाल ॥

(मम करो काया माया कारमी ॥ एदेशी ॥)

सामायिक समता पणो । सावद्य जोग पचखाणजी । काल थकी महूरत एकनो । दुविहं तिविहेणं जाण जी ॥ शिखाजी व्रत आराधिए ॥ १ ॥ उत्कृष्टै भांगै करी । तीन करण तीन जोगजी ॥ ग्रहवासतणी बार्त्तां तणो । न करै हर्ष नै सोगजी ॥ शि ॥ २ ॥ उपगरण सामायक करता राखिया ॥ तिण उपरान्त किया पचखाणजी ॥ राख्याते अव्रत परिभोगरी । तिणरो पाप निरन्तर जाणजी ॥ शि० ॥ ३ ॥ जे उपगरण सामायी में राखिया । त्यांरो पिण करे प्रमाणजी ॥ बाकी तीन करण तीन जोगसूं । पांचूंही आस्रवना पचखाणजी ॥ शि ॥४॥ ते उपग्रण पहरै ओडै बावरै । विछावणादिक करै बारंबार जो । ते शरीर री साता कारणे । ते तो सावद्य योग व्यापार जो ॥ शि० ॥५॥ वलि गहणां आभरण कानें रह्या ॥ ते पिण अव्रतमें जाणजी ॥ तिणरो पाप निरन्तर जीवरै । सामायिक मे पिण लागेछे आण जो ॥ शि० ॥ ६ ॥ ते गहणां आभेणारा जतन करै । त्यांसे राजी हुवै तिणवार जी आघा पाछा समारै तिण अवसरै । सावद्य जोग व्यापारजो ॥ शि० ॥ ७ ॥ उपग्रण गहणां कानै

राखिया । ते तो नहीं आवै समाईरै कामजी ॥ काम तो आवै परिभोगमें । सुखसाता शोभादिक तामजी ॥ शि० ॥ ८ ॥ सामाई री दीधी जिन आगन्या । ते समाई छे संवर धर्म जी ॥ उपग्रथ गहणां परिभोगव्यां । तिणसे तो लागे छे पापकर्म जी ॥ शि० ॥ ९ ॥ समाई मे श्रावक री आतमां । अधिकरण कही जिन रायजी ॥ भगवतीरै शतक सातमे । पहिला उद्देशा रै मांयजी ॥ शि० ॥ १० ॥ अधिकरण ते शस्त्र छ:कायनो । तिणरो साथरो करै अंशमात जी ॥ तिणरी सार संभार जतन करै । ते सावद्य जोग साक्षातजी ॥ शि० ॥ ११ ॥ कपड़ो ओढै पहरै वावरै । वलि वैयावच करै तायजी ॥ तिण अधिकरण ने सांतरो कियो । तिणरी आज्ञा नहीं दे जिन रायजी ॥ शि० ॥ १२ ॥ अंश मात शरीर रो कारज करै । ते तो सावद्य जोग छे तायजी । तिणसु पाप लागेछे जीवरै । तिणरी आज्ञा नहीं देवै जिन-रायजी ॥ शि० ॥ १३ ॥ हालवो चालवो शरीर रो । सुख साता काज करै जाण जी ॥ ते सावद्य जोग श्रीजिन कह्या । तिणसूं पापकर्म लागे छे आण जी ॥ शि० ॥ १४ ॥ जिन कर्त्तव्य कियां जिन आज्ञा नहीं । ते सावद्य जोग साक्षात जी ॥ जिण कर्तव्य

क्रियां छै जिन आज्ञा। ते निरवद्य योग्य विख्यात जी ॥ शि० ॥ १५ ॥ उपग्रण गहणा शरीर ना। जतन करैं समाई मझारजी ॥ त्याने जिन आज्ञा नहीं सर्वथा। ते सावद्य जोग तणा व्यापार जी ॥ शि० ॥ १६ ॥ कनैं राख्या त्यांरा जतन करैं। यो राख्यो समाईमें आगार जी ॥ समाई करतां जे नहीं राखिया। त्यांरा जतन नहीं करैं लिगार जी ॥ शि० ॥ १७ ॥ श्रावक रा उपग्रण अब्रत मझैं। कह्या उववाई ने सुयगड़ा अङ्गजी ॥ त्यांने सेवै सेवावै ते सावद्य जोग छै। तिणरी आज्ञा नही दे जिनरङ्ग जी ॥ शि० ॥ १८ ॥

॥ भावार्थ ॥

सामायिक अर्थात् याने समभाव रखना समता रखना उसको सामाई कहते हैं एक महूरत तक सावद्य जोगके त्याग करें जघन्य दो करण तीन जोगमें उत्कृष्ट तीन करण तीन जोगसे जानना, सामाइक में ग्रहस्थाश्रमकी वार्ते निन्दा विकथादि नहीं करना और जो कपड़ा आदि उपग्रण सामाई में रक्खे हैं वो अव्रत है आगार उपरान्त सावद्य जोगके त्याग किये हैं सो सामाइक है जिसमें श्रावकके संवर होता है व.की जो जो उपग्रण तथा गहणां रक्खा है सो सावद्य जोग है जिसमें पाप कर्म निरन्तर लगता है क्यों के जो कपड़ा तथा गहणा आदि आगार रक्खा है सो अव्रत हैं उपग्रणोंकी सार संभार करता है बिछावणादि बार बार करता है सो शरीरकी साता के लिये हैं उसमें सामाइक पुष्ट नहीं होती इसलिये सावद्य जोग व्यापार है, गहणा कपड़ादि जो रक्खा है वो सामाइकके काम नही आते हैं वोतो परिभोग

के काम आते हैं अथवा अपणी शोभा के निमित्त पहरते ओढ़ते हैं, सामइक की श्रीजिनेश्वरदेवों की आज्ञा है किन्तु उपग्रण कनें रक्खा उसकी आज्ञा नहीं है इसलिये उन्हें परिभोगव्यां पापकर्म लगता है, श्रीभगवती सूत्रके सातमां शतक पहला उद्देशामें सामाइक में श्रावक की आतमा अधिकरण कही है और अधिकरण है सो छःकाय जीवोंका शस्त्र है तो शस्त्रकी सार संभार करेस। निरवद्य जोग कैसे हो सकते हैं वो तो सावद्य जोगही है इसलिए जिन आज्ञा नही है, तात्पर जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा हैं निरवद्य. जोग है और जिस कर्त्तव्य में जिन आज्ञा नहीं है सो सावद्य जोग है।

कोई कहे सामाइक कीधी तेहने। सावद्य जोग पचखाणजी ॥ तिणरे पापरो आगार किहांथी रह्यो। कोई एहवी पूछा करे आण जी ॥ शि० ॥ १९ ॥ तेहने जवाब इम दीजिए। सर्व सावद्यरा नहीं पचखाणजी ॥ सर्व सावद्यरो त्याग साधां तणे। तेहनो करो पिछाणजी ॥ शि० ॥ २० ॥ छः भांगा समाई मे पचखिया। तिणरे तीन भांगारो आगार जी ॥ तिणरे पाप लागेछे निरन्तरे। एहवा सावद्य जोग व्यापार जी ॥ शि० ॥ २१ ॥ तिणरे पुत्रादिक हुआं हर्ष हुवे। मूवां गयां होवे सोगजी ॥ इत्यादि आगार सामयिक मझे। एहवा सामयिक मे सावद्य योगजी ॥ शि० ॥ २२ ॥ गहणा कपड़ा राख्या तेहना जतन करे समाई रे मांयजी ॥ ते पिण सावद्य योग छे। तिणरी आज्ञा न देवे जिनरायजी ॥ शि० ॥

२३ ॥ शरीर कपड़ादिक तेहनां । जतन करै सामायिक मांयजी । लाय चोरादिकरा भय थको । एकान्त स्थानक जयणा से जाय जी ॥ शि० ॥ २४ ॥ ते पिण सावद्य योग छै । आगार सेयो समाईरै मांहिजी ॥ सामायिकमें समता राखणी । चित न चलावणु ताहिजी ॥ शि० ॥ २५ ॥ लाय सर्पादिक करा भयथकी । जयणासूं निसर जाय भागजी ॥ पाखती मनुष्य बैठा हुवै । त्यांने तो नहीं ले जावै बाहरजी ॥शि०॥ २६ ॥ आपरो तो आगार राखियो । ओरां रो नहीं छै आगारजी । ओरां नैं त्याग्या समाई मझे । त्यांने किण विधि ले जावै बाहरजी ॥शि०॥ ॥ २७ ॥ लाय चोरादिक रा भय थको । राख्या ते द्रव्य ले जाय जी ॥ पाखती कपड़ादिक हुवै घणा । त्याने तो बाहर न ले जावै तायजी ॥ शि० ॥ २८ ॥ राख्या ते द्रव्य ले जावतां । समाई रो भङ्ग न थाय जी ॥ त्याग्या छै त्याने ले जावतां । समाई रो व्रत भाग जायजी ॥ शि० ॥ २९ ॥ तिणसूं सर्व सावद्य जोगरा । समाईमें नहीं पचखाणजी ॥ आगार उपरान्त सावद्य जोगरा । पचखाण किया छै पिछाणजी ॥ शि० ३० ॥ तिणसूं त्याग किया तिके । ते सावद्य जोगरा पचखाणजी ॥ त्याग नहीं सर्व सावद्य जोगरा ।

ते तो मारग साधु तणो जाणजी ॥ शि० ३१ ॥

॥ भावार्थ ॥

सामायिक में सावद्य जोग के त्याग हैं सो सर्वत नही है देशतः है, तब कोई कहै समायिक पचखते वक्त सावद्य जोग के त्याग करते हैं उस वक्त कौनसा पाप करण का आगार है एसा कहै उन्हे जवाब देना चाहिए कि साधके तो 'सर्व सावज्जं जोगं पचक्खामि" ऐसा पाठ है और श्रावक के सामायिक मे "सावज्जं जोगं पचक्खामि" ऐसा पाठ कहा है तो खुलासा मांलूम होगया कि श्रावक के सामायिक में सर्व सावद्य जोग के त्याग नही है तथा छः भांगासे सामाइक करनेसे तीन भांगे आगार रहा सो सावद्य है उनका पाप अव्रत का निरन्तर जीवके सामाइक में लागता है अर्थात् अनुमोदनेंका मन वचन काया आगार है, पुत्रादि होनेकी खबर सुनके हर्ष और मरनेकी वा खोये गये की सुनके सोग आता है और जो गहना कपडा सामाइक में पहनाहुआ है वो परिभोग हैं उसे भोगता है सो अव्रत सेता है तथा उनकी सार संभार करता है वोभो सावद्यही जोग है, शरीरका यतन करता है लाय चोर आदिका भयसे जयणायुत एक स्थानसे दूसरे स्थान जाता है सो ग्रहस्थके जाने आनेकी जिन आज्ञा नही है इत्यादि अनेक कार्य जो जो जिन आज्ञा वाहरका कार्य सामाइक में करता कराता है सो सर्व सावद्य जोग है जिसमें पाप कर्म लगता है, लाय चोर सर्पादिकके भयसे सामायिक में एक जगह से दूसरो जगह में जाता है जिसमें सामाइक का तो भंग नहीं होता क्योंके यह आगार रक्खा हुआ है परन्तु सावद्य जोग है सो तो पाप लगता है, पास में और दूसरे बैठे हुए हैं उनको बाहर लेजाना आगार नही है इसलिए उनको बाहर नहीं लेजा सक्ता, जो जो कपडादि उपग्रण आगार रक्खा है उन्हेंहीं लेजाता है पास में अपने कपड़े आदि अनेक वस्तु पडी है लेकिन वो आगार नहीं इसलिए उन्हें नही लेता है, जो आगार रक्खा है उनही की सार

संभार करता है इसवास्ते श्रावक के सर्वतः सावद्य जोगोंके त्याग सामायिक में नहीं है।

॥ ढाल तेहिज ॥

उपग्रण राख्या सामाई मझे। तेतो पहिलै करण लिया जाणजी ॥ ते ओरां ने भोगवासी किण विधे। ओरांरातो किया पचखाणजी ॥ शि ॥ ३२॥ द्रव्य थकी तिण उपरान्तरा। सगलारा किया पचखाणजी ॥ खेत थी सर्व खेत्र मझै। काल थी महूरत एक जाणजी॥ शि ॥ ३३ ॥ भाव थकी राग द्वेष रहित छै। जब संवर निरजरा गुण थायजी ॥ इणरीतै समाई ओलखी करै। जब सामाइक हुवे तायजी ॥ शि ॥ ३४ ॥ अवर सघला ने त्याग दिया। त्यांसू करै संभोगजी॥ तिणसूं भांगे समाई व्रत तेहनूं। इणरा वर्ज्यां छै सावद्य जोगजी ॥ शि ॥ ३५ ॥ कोइ सामाई में सामाई तणूं। कारज करणू राख्यो छै आगारजी॥ तिणरो कार्य कियां समाई भागै नहीं। तिणरो पिण करै विचारजी ॥ शि ॥ ३६ ॥ समाई मे मांहो मांहि कारज करै। तेतो सूल मे नहीं छै तायजी ॥ ते निश्चय थापणी आवे नहीं। ज्ञानी वदै ते सत्य वायजी ॥ शि ॥ ३७ ॥ कोई कहै समाई में राखो पूंजणी।

राखीते दयारे कामजी ॥ तिणरो जबाव सूणू विवरा सुद्ध । चित्त राखी एकत ठामजी ॥ शि ॥ ३८ ॥ शरीरादि पूंजे समाई मझे । माचादि परठे पूंजजी ॥ एहवा कार्यरी जिन आज्ञा नहीं । तिणमें दर्‍ कहे ते अबूझजी ॥ शि ॥ ३९ ॥ शरीर पूंजे परठे माठो । ए शरीरादिकराछेकाजजी ॥ जो धर्म तणु कारज हुवे । तो आज्ञा देवै जिन राजजी ॥ शि ४० ॥ जो पूंजणुं परठणुं करे नही । कायस्थिर राखे एक ठामजी ॥ हस्तादिक विना हलावियां । रहणो नहीं आवेछै तामजी ॥ शि ॥ ४१ ॥ वली अ-वाधा वडी नीतरी खमणी न आवे छै तामजी । तिणसूं पूंजे छै जायगा जोयने, ते समाई तणूं नही कामजी ॥ शि ॥ ४२ ॥ माखी माछर कीडो आदि दे । ते तो लागै छै शरीररै आयजी । ते खमणी न आवे तेहथी । तिणसूं पूंज परठा करे तायजी ॥ शि ॥ ४३ ॥ जो काया स्थिर राखे एक आशणें । तिणरे पूंजणीरो कांईकामजी ॥ परिषह खमणी नहीं आवे तेहसे । पूंजणी राखी छे तामजी ॥ शि ॥ ४४ ॥ जो इतनी वार्त्ता समझ पड़े नही । तो राखणी जिन प्रतीतजी ॥ जिन आज्ञा वाहर धर्म श्रद्धने । नही करणी एहवी अनीतजी ॥ शि ॥ ४५ ॥ शरीर

उपग्रणरा जाबता । क्रियां सावद्य जोग व्यापारजी ॥ जे शरीरसुं निरवद्य कर्तव्य करै तिणने जिन आज्ञा दे श्रीकारजी भि ॥४६॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

सामाइक में जो उपग्रण रखा है सो प्रथम करण परिभोगने को रखा है वो दूसरे को कैसे भोगावै दूसरेको भोगानेका तो त्याग है इस लिए सामायिक पचखते समय कहता है द्रव्य थकी नो जो कनें रखा सो द्रव्य उपरान्त त्याग, क्षेत्र थकी सर्व क्षेत्रों में एह त्याग है अर्थात् किसी जगह भी आगार नहीं, काल थको एक महूरत लग, भावथी रागद्वेष रहित है तब संवर निरजरा मयी गुण निपजता है, इस तरह सामायिक को पहचान के सामायिक करणें से सामायिक होती है, त्यागे हुएसे संभोग करने से सामायिक व्रत भंग होता है इसवास्ते जो कार्य आगार नही रखा है उन्हें नहीं करना चाहिए, कितनेक सामाइक में सामाइक वालेका कार्य करना आगार रखके कार्य करते हैं तो उनकी सामायिक नहीं भागती है परन्तु उसका भी प्रमाण करना अवश्य है, सामायिक में दूसरे सामायिक वाले का कार्य करना आगार रखे सो सूत्रों में नहीं कहा है इसमें इस बोलकी स्थाप नही की जाती इसमें निश्चय ज्ञानी कहै सो सत्य है, कोई कहै दया पालनेके निमित्त समाई में पूंजनीरखते हैं सो पूजनी रखने में धर्म है ऐसो कहै जिसका जवाब यह है कि पूंजणो रखते हैं सो अव्रत में है अपना शरार स्थिर नही रह सका चञ्चलता के कारण हाथ पग हलाता है तथा एक जगहसे दूसरी जगह अंधेरे में जाना आता है वा मख्खी मच्छर आदि शरीर पे वैठते हैं तो उनको जयणासे पूंजना कीडी कुंथुवादि जीवों को अनुकम्पा लाके उन्है नही मारना यह जो दया भाव है सो निरवद्य है किन्तु पूंजणो रखी सो निरवद्यजोग नहीं है अव्रतास्रव है सावद्य योग जिन आज्ञा बाहर है, मक्खी मच्छर आदि

शरीर के चटके देवे वो परिषह खमना परन्तु खमें नही जाते तव पूंजणी से उन्हें दूर करता है यहतो प्रत्यक्ष अपनी कचाई है जो अपनी काया एक आसन स्थिर रखें तो पूंजणी की क्या जरूरत है इस लिये पूंजणी रखता है सो शरीरके काम आती है लेकिन सामायिक के काम नहीं आती इसलिए सावद्य जोग है स्वामी श्रीभीखनजी कहते हैं कि इतनी कहें भी समझ नहीं पड़े तो श्रीजिनेश्वरोंकी प्रतीत रखना चाहिए समझना चाहिए कि जिस कार्यकी जिन आज्ञा है सो कार्य करते कराते अनुमोदते धर्म है ओर जिस कार्य को जिन आज्ञा नहीं है उसे करते कराते अनुमोदते धर्म नहीं है ॥ इति ॥

॥ अथ दशमू देशावगासी व्रतम् ॥

॥ दोहा ॥

दशमूं देशावगासी व्रत छै। तिणरो भेद अ-नेक ॥ थोड़ासा प्रगट करूं। तें सुणजो आण विवेक ॥१॥

॥ ढाल मम करो काया माया कारमी ॥

॥ दोहा ॥

देशावगासी व्रतनां। भांगा हुवे विविध दोयजी ॥ पहलो छै छट्ठा नोपरे। दूजो सातमां ज्यूं होयजी ॥ सिखाजी व्रत अराधिये ॥ १ ॥ दिन प्रते प्रभात थी। छहुं दिशिरो कियो प्रमाण जी ॥ मर्यादा कीधी

तिण बारली । पांचूं हीं आस्रवनां पचखाणजी ॥ सि ॥ २ ॥ जे भूमिका राखी छै मोकली । तिण मांहि द्रव्यादिकनो व्यापारजी ॥ मर्यादा शक्ति साढ करै भोगादिक करै परिहारजी ॥ सि ॥ ३ ॥ कालथी दिवसने रातनूं । भावथी विवध प्रकारजी ॥ करण जोग घाले तेतला । जेतला करै परिहारजी ॥ सि ॥ ४ ॥ वलि जघन्य नवकारसी आदिदे । उतकृष्टो घाले काल कोयजी ॥ मर्यादा सूं त्यागे सावज्झ भणीं । जिम करै तिमि होयजी ॥ सि ॥ ॥ ५ ॥ कोई करै छै त्याग हिन्सा तणु । तिण में कालरो करै प्रमाणजी ॥ ते त्याग पूरा हुवां तेहने । आगे तो नहिं पचखाणजी ॥ सि ॥ ६ ॥ हिंसा झूंठ चोरी मैथुन नूं । वलि पांचसूं परिग्रह जाणजी ॥ एह पांचूं हीं आस्रव द्वारनुं । काल घालिनें करै पचखाणजी ॥ सि ॥ ७ ॥ प्रमाण करै छब्बीस बोलनूं । पंदरा कर्मादान तणूं प्रमाणजी ॥ वलि सचितादि चवदह नियमनूं । यांरा नित्य नित्य करै पचखाणजी ॥ सि ॥ ॥ ८ ॥ नवकारसी पोहरसी पुरमुढ । येकाशणों आंबलादिक तासजी ॥ उपवास बेलादिक तप करै । उत्कृष्टो करै छमासजी ॥ सि ॥ ९ ॥ तपतणूं कष्ट हुवे तिको । ते

करणी निरजरा तणी जाणजी ॥ खावा पीवारो व्रत हुवो तिका। ते दशमूं व्रत हुवै थाणजी ॥ सि ॥ १० ॥ जे जे सावद्य त्यागै तेहमें। कालरो करै प्रमाणजी ॥ तेह दशमूं व्रत नीपजे। इणमें जावज्जीवरा नहीं पचखाणजी ॥ सि ॥ ११ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब दशमां देशावकासी व्रत कहते हैं—अर्थात् कालका प्रमाण करिके त्याग करै वो दशमां व्रत है यह दो भांगोंसे होता है प्रथमां भांगे तो छट्टाव्रत सम, और द्वितीया भागै सातमां व्रत सम है, जिसका भेद विवध प्रकार से जानना जिसमें इहां संक्षेपमात्रसे वर्णन करते हैं द्रव्यतः दिवश प्रते प्रभात से छहुदिशोंका प्रमाण करके मर्यादा उपरांत पांच आस्रवद्वार सेने सेवानेका पचखाण करना, जितनी भूमि रक्खी उसमें भी यथाशक्ति द्रव्यादिक की मर्यादा उपरान्त विषय भोगादि का त्याग, कालथकी दिवस रात्रि प्रमाण, रागद्वेष रहित उपयोग सहित अनेक प्रकार अर्थात् इच्छा प्रमाण करण योग से, और गुणथकी संवर निरजरा ; पुनः जघन्य नवकारसी अर्थात् एक महूरत तक और उत्कृष्ट जितना काल तक करै उतनाही काल तक सावद्य जोगोंके त्याग और हिन्सादि पंच आस्रवद्वार के त्याग जैसे जैसे करै उसही तरह से दशमाव्रत होता है यह प्रथम भांगा कहा; दूसरे उलणिया विहं आदि छवीस बोल, इंगालिक कर्म आदि पंद्रह कर्म्मादान, और सचितादि चवद्ह नियम की मर्यादा उपरान्त जितने कालतक के त्याग करैं सो दशमांव्रत है, नवकारसी पहोरसी पुरमुढ अर्थात् डेढ पोहरसी, एकाशणा उपवास बेला तेला आदि छमासी तप श्रावक करै सो दशमां व्रत है, तप करते कष्ट सहन करैं जिसमें निरजरा होती है और सावद्य जोगोंके त्यागने से श्रावकके संवर होता है सो दशमां व्रत संवर

है, तात्पर्य इसमें जावज्जीवके पचखाण नहीं है, कालकी मर्याद रखके जो जो त्याग किये सो व्रत हैं आगार रक्खा उसे सेता सेवाता और अनुमोदता है सो अव्रत है जिससे पाप कर्मोपार्जन होता है।

॥ अथ इग्यारमां व्रत ॥

॥ दोहा ॥

श्रावकरो व्रत ग्यारमूं। पोषध कह्यो भगवान॥ सिखा व्रत रलियामणों। हिवे सुणू सुरत दे कान॥ १॥

॥ ढाल देशी तेहिज ॥

हिवै पोषध व्रत रलियामणूं। पचखै चिहुं विधि आहारजी॥ अवम्भ मणी सुब्रण तजै। माला वणग विलेवण परिहारजी॥ सिखाजी व्रत आराधिए॥ १॥ शस्त्र मूशलादिक आदि दे सावज्ज जोग तणा पचख्खाणजी॥ कालथी दिवसने रातनूं। एक पोसा तणूं प्रमाणजी॥ सि॥ २॥ जघन्य दोय करण तीन जोगसूं। करै सावज्ज जोग पचखाणजी॥ कोई उत्कृष्ट भांगे करै। तीन करण तीन जोगसे जांणजी॥ सि॥ ३॥ द्रव्यथी करैं तिण उपरांतरा

किया सर्व द्रवांरा पचखाणजी ॥ खेतथी सर्व खेतां मझे । कालथी दिवसने रातिरा जाणजी ॥ सि ॥४॥ भावथी रागद्वेष रहित करै । वलि चोखे चित्त उपयोग सहितजी ॥ जब कर्म रुके छै आवता । वलि निरजरा हुवे रूडी रीतजी ॥ सि ॥ ५ ॥ उपग्रण पोसामे राखिया । तिण उपरान्त किया पचखाणजी ॥ राख्या ते अव्रत परिभोगरी । तिणरो पाप निरन्तर लागे छै आणजो ॥ सि ॥ ६ ॥ पोसाने सामाइक व्रतनां । सरिषां छै पचखाणजी ॥ सामाइक तो महूरत एकनीं । पोषो दिवस रातरो जाणजी ॥ सि ॥ ७ ॥ पोषानें सामाइक व्रतमें । यां दोयामे सरिषो छै आगारजी ॥ ते कह्या छै सघलाही अव्रत मही ते जोय करो निस्तारजी ॥ सि ॥ ८ ॥ जब कोई कहै पोषध व्रतमे । मणी सुव्रणादि पचखाणजी ॥ तिणसूं मणी सुव्रणादि कनें राखियां पोषो भाग गयो जाणजी ॥ सि ॥ ९ ॥ पोसा मांहि कनें राखीया । मणी सुव्रणादिक जाणजी ॥ तिण उपरान्त राखणरा पचखाण छै ॥ तसुं उत्तर यह पिछाणजी ॥ सि ॥ १० ॥ उमुक कहितां मूंकी दिया । त्यां मणी सुव्रणरा पचखाणजी ॥ कनें रह्या त्यांरी अव्रत रही । भगवती सूं करिजो पिछाणजी ॥ सि ॥ ११ ॥ जो

मणी सुवर्णरा जावक पचखाण हुवे। तो उ-मुकरो पाठ कहता नांहिजी ॥ ओतो निर्णय उघाडो दीसी गयो। विचार देखो मन मांहिजी ॥ सि ॥ १२ ॥ श्रेणिकने कृष्णजीरी राणियां। इत्यादिक राणियां अनेक जी ॥ त्यां पोषा किया दिसै गहणां थकां। समजो आण विवेक जी ॥ सि ॥ १३ ॥ त्यांरी चूड्यांमे हीरा पन्ना जड्या। वले दांतांमें जाणिजे मेखजी ॥ और गहणां त्यांरै पहरणै। तां उतार्या न दीसि छै एक जी ॥ सि० ॥ १४ ॥ भारी भारी जुहांर चूड्या जड्या। वलि भारी भारी गहणां हाथ गला मांहिजी ॥ ते सघ-लाही कीम उतारसी। येतो मिलतो न दीसै छै न्याय जी ॥ सि ॥ १५ ॥ त्यां कोधी समाई संध्याकालरी। समाई कीधी रात प्रभातजी ॥ ते खिण २ मे कीम उतारसी। या पिण मिलती न दीसै बात जी ॥ सि ॥ १६ ॥ सामाईमें गहणां नहिं राखणां। तो चूडां नहीं राखणो तायजी ॥ गहणांनें चूड्यां तो एकही जक्के। दोनूं ही आभूषण म्हांय जी ॥ १७ ॥ सामाईने पोसा तणों। दोयां री विधि जाणिजो एक जा ॥ रीत दोयांरो बरोबरी। समझो आणि विवेक जी ॥ सि ॥ १८ ॥

॥ भावार्थ ॥

अब इग्यारमां पोषध अर्थात् धर्म पुष्टी रूप व्रत कहते हैं जिसमें इस माफिक त्याग होते हैं।

१ असाण (आहार) पाण (पाणी) खादिम (मेवादिक) स्वादिम (पान सुपारी लवंगादि) के त्याग।

२ अवम्भ अर्थात् अब्रह्मचर्य ते मैथुन के त्याग।

३ उमक मणीं सुव्रण अर्थात् रत्नादिक वा सुवर्णादिक वोसराये हुए के त्याग।

४ माला अर्थात् पुष्पमाला फूल आदि के त्याग।

५ वणग अर्थात् गुलाल अबीर रङ्ग आदि के त्याग।

६ विलेपन अर्थात् केशर चन्दन आदि का विलेपन करने का त्याग

७ सत्थ मूशलादि सावज्भ जोग अर्थात् शस्त्र मूशल आदि सावद्य जोग वर्ताने का त्याग।

उपरोक्त सात प्रकार के त्याग किये जाते हैं सो खेत्र थी सर्व खेत्रों में, कालथी अहोरात्री प्रमाण, दोय करण तीन जोगों से वा तीन करण तीन जोगों से, भावथी राग द्वेष रहित गुणथी संवर निरजरा, इस प्रकार अपने पास में ज्यो वस्त्र वा गहणा आदि द्रव्य पोसा पचखते वक्त रक्खा हैं उन द्रव्यों उपरांत सावद्य जोग सेना सेवाना का त्यान होता है, जो उपग्रण कने रक्खे वो अव्रत में है जिससे परिभोग की अव्रत पोसा में निरंतर लगती है, पोसा और सामाईक के आगार एकसा है आगार उपरांत त्यांग किये सो सामाईक का नवमां व्रत एक महूरत का है और पोसा इग्यारमां व्रत रात्रि दिन का है, जब कोई ऐसा कहे कि पोसा अङ्गीकार करता है तब सुव्रणादि तथा मणीरत्नादि का पचखाण करता है इसलिये पोसा में गहना नही रखना चाहिये जिसका जवाब यह है कि पोषध व्रत में उमक मणो सुव्रण के त्याग हैं अर्थात् मूंके हुए मणो सुव्रण रखणे के त्याग है अपने पास में गहना पहरा हुआ है वो तो आगार है इस वास्ते त्याग भंग नही होता, आगले

जमाने में भी कृष्ण जी और श्रेणिक राजा की राणियों ने पोषह किये हैं उनकी चूडियों में तथा आभूषणों में अनेक बहु मूल्य रतन जड़े हुए थे परन्तु चूडियां उतार कर पोषध किया ऐसा अधिकार कहीं भी सूत्रों में आया नहीं तथा सामाईक व्रत करते वक्त भी पहने हुए आभूषणों का आगार है सो अव्रत आस्रव द्वार है परन्तु त्यागों का भङ्ग नहीं होता यदि आभूषण रखणे से सामइक और पोषध व्रत का भङ्ग होय तो फिर किञ्चित मात्र भी सुव्रण अथवा रतन जडित आभूषण नही रखना चाहिये स्त्री जाति के सामाइक और पोषध में चूडियां तो अवश्य ही रहती है, किसी स्त्रीने संध्या समय वा अर्द्ध रात्री समय सामाइक करी तो वेर वेर में चूडियां कैसे खोलेगी चूडियां खोल के सामाइक करै ये न्याय तो मिलता नही इसलिये स्पष्ट ही मालूम हो गया कि मणी सुव्रणादिका सर्वथा प्रकार त्याग नहीं है और जो सामाइक की विधि है वोही पोषध की विधि है।

॥ ढाल तेहिज ॥

यह लोकरै अर्थ करै नहीं। न करै खावा पीवारै हेतजी ॥ लोभ लालच हेतु करै नहीं। परलोक हेत न करै तेथजी ॥ सि ॥ १९ ॥ संवर निरजरा हेते करै। और वञ्छा नहिं कांयजी ॥ इण परिणामां पोसो करै। ते भावथकी शुद्ध थायजी ॥ सि ॥ २० ॥ कोई लाडूआं साटै पोसो करै। कोई परिग्रहो लेवा करै तामजी ॥ कोई और द्रव्य लेवा पोसो करै। ते कहवा नें पोसो छे नामजी ॥ सि० ॥ २१ ॥ ते तो अरथी छे एकान्त पेट रो। ते मजूरिया तणी छे पातजी ॥

त्यांरा जीवरो कारज सरै नहीं । उलटी घाली गला मांहि रांतजी ॥ सि ॥ २२ ॥ लाडूआं साटे पोसा करावसी । अथवा धन देई तामजी ।। ते कहि-वानें पोसो कराविये । पिण संवर निरजरा नूं नहीं कामजी ।। सि० ॥ २३ ॥ कर्म काटण करे मजूरिया । त्यांरा घट मांहि घोर अज्ञानजी ।। लाडू खवाय पोसा करावणूं । ये तो कठे ही न कह्यो भगवानजी ॥ सि० ॥ २४ ॥ करम काटण करै मजूरिया । त्यांरा घट मांहि घोर अंधारजी ॥ पइसा देईने पोसा करावणां । ते नहिं चाल्या सूत्र मझारजी ।। सि० ॥ २५ ॥ मजूरिया करै खेती निंदाणवा । मजूरिया करै घर करावा कामजी ॥ कड़व काटण करै मजूरिया । कर्म काटण नहिं चाल्या तामजी ।। सि० ॥ २६ ॥ खेत खड़वा नें चाल्या मजूरिया । वलि भार लेजावण कामजी ।। धान खांडण करै मजूरिया । कर्म काटण नें नहिं चाल्या तामजी ।। सि० ॥ २७ ॥ विरक्त होय काम भोगथी । त्यांने त्याग्या छै शुद्ध प्रणामजी ।। मुक्तिरै हेतु पोसो करै । ते असल पोसो कह्यो स्वामजी ॥ सि ॥ २८ ॥ इण विधि पोसो किया थकां । सोभसी आतम कार्यजी ॥ कर्म रुकसी ने वलि

टूटसी । इम भाषियो श्री जिनरायजी ॥ सि ॥ २९ ॥ इति ॥

॥ भावार्थ ॥

पोषध यह लोक के लिये परलोक के लिये अर्थात् परलोक में सुखों की वांछा निमित्त और खाने पीने के लिये तथा किसी प्रकार का लाभ लालच के निमित्त नही करना चाहिये, एकान्त संवर निरजरा के निमित्त पोषध व्रत करने से भाव पोसा होता है, यदि किसी ने लाडू खाने के या परिग्रह लेने के निमित्त पोषध किया तो वो सिर्फ नाम मात्र पोसा है, लाडू खाने के निमित्त पोसा किया सो तो पेटार्थी है उन्हें मजदूरों की पंक्ति मे जानना उनका कार्य सिद्ध नहीं होता है उन्हों के तो अशुभ कर्म का बंध होता है, इस ही तरह किसी ने लाडू खवा के या धन देके पोसा कराया तो वो नाम मात्र पोसा कराया जानना ऐसे पोसा कराने से संवर निरजरा कदापि नहीं होता है और दूसरों का माल लाडू आदि मिष्टान खाके जो मजदूर पोसा करते हैं उनके हृदय में घोर अज्ञान है क्योंके उन्हों ने तो सिर्फ खाने के निमित्त पोसा किया है वो लोग यह नहीं जानते कि पोसा क्या है और कैसे होता है, कर्म काटणे के निमित्त मजदूरो से पोसा कराना ऐसा कहीं भी भगवान ने नहीं कहा है पैसा देके मजदूरों से पोसा कराना और पैसा लेके पोसा करना ऐसा अधिकार किसी भी सूत्र में नहीं है परन्तु भोलें लोक कुगुरुवोंके उपदेश से जिमा के या पैसा देके पोसा कराते हैं वो अपनी मान बड़ाई और जशो कीर्त्ति के कामी हैं, खिलाने और धन देने से धर्म कदापि नही होता हैं यदि ऐसे पोसा हो तो चौथे आरे मे तो धनाढ्य श्रावक वहोत थे किन्तु किसी ने भी इस तरह मजदूरों से पोसा कराया नही, और जो श्रावक है वो तो इस तरह पोसा करता नहीं, कर्म काटणे के मजदूर तो कहीं सुने नहीं, अलवत्ता खेती करने को निर्माण करणे को बोझ भार उठाणे को कडब

काटणे अदि कार्य करणे को तो मजदूर हैं परन्तु कर्म काटणे के मजदूर तो नहीं होते एतो प्रत्यक्ष दिकलाई है, इस तरह पोसा नहीं होता है, होता है सिर्फ वैराग्य भाव लाके काम भोगों से विरक्त होनेसे और यथार्थ श्रद्धावन्त होने से तब ही आतम कार्य की सिद्धि होती है, श्रावक के पोसा करने से आवते कर्म रुकते हैं और अशुभ कर्म क्षय होके जीव निरमल होता है उसही का नाम पोसा होता है उसही का नाम पोसा है बाकी लोभ लालच के निमित्त पोसा करने कराने से धर्म कदापि नहीं होता है, तात्पर्य पौषध लेते वक्त जो जो सावद्य जोगों के त्याग किया है वो इग्यारमां व्रत है सो ही श्रावक धर्म है और जो जो आगार रक्खा है वो अव्रत आस्रव है अव्रत सेने सेवाने और अनुमोदने मे एकान्त पाप है ॥ इति ॥

अथद्वादशम् अतिथि संविभाग व्रतम्

दोहा।

अतिथि संविभाग चौथो शिखा। ते वारमूं व्रत रसाल ॥ श्रमण निग्रंथ अणगार ने। दान देवै दृग चाल ॥१॥ ते फासू अचितने सूझतो। कल्पै ते द्रव्य अनेक ॥ कल्पैत खित काल मे दान दे आणि विवेक ॥२॥ जो उ दान दे मुक्ति ने कारणे। और वंछा नहिं कांय ॥ जब निपजै व्रत वारमूं। इम भाख्यो जिन-राय ॥ ३ ॥ इग्यारा व्रत वश आपरै। प्रति लाभ्यां सै थाय ॥ ४ ॥ लाखां कोडां खरचिया। जीव अनन्तो वार ॥ पिण दान सुपात्र दोहिलो। ते जीव तणों

आधार ॥ ५ ॥ ए व्रत निपावा कारणै । उद्यम करै नितनेम ॥ भावै साधांरी भावना । हाथें दान देवा सूं पेम ॥ ६ ॥ आलस छोडणूं किण विधे । किण विध देणूं दान ॥ उद्यम करणों किण विधे । ते सुणों सूरत दे कान ॥ ७ ॥

॥ भावार्थ ॥

चौथा शिखाव्रत क्या है और कैसे होता है सो कहते हैं। इस का नाम अतिथि संविभाग है अर्थात् अतिथि को संविभाग देना परन्तु वो अतिथि कैसे होना चाहिये कि जिन्होंको देनेसे बारमा व्रत निष्पन्न हो सो कहते हैं, "समण निग्रंथ अणगार ने दान देवै दगचाल अर्थात् श्रमण तप संयम में श्रम करैं, ग्रंथ कहिये परिग्रह ते धन धान्यादि नहि रखने वाले, और अणगार कहिये घर रहित ऐसे साधू महात्मावों को प्रासूक अचित निरदोष आहार पानी काम भोगों की अभिलाषा रहित एकान्त मुक्ति की आशासे देनेसे श्रावक के बारमां व्रत निपजता है। इग्यारा व्रत निपजाना तो अपनी हाथ की बात है जी चाहे जब निपजा सकता है परन्तु बारमाव्रत तो शुद्ध साधू मुनिराज का संयोग मिलने से और आहार पानी आदिकी शुद्ध जोगवाई होने से होना है, लाखों क्रोड़ों का खरच और संसारिक दान तो यह जीव अनन्ती बार किया है परन्तु सुपात्र दान देना महा दुर्लभ है सुपात्र दान से ही बारमाव्रत होता हैं इसलिये श्रावकको इस व्रत निपजाने का उद्यम करना अत्यावश्यक है हमेशा मुनिराजों की भावना दिलमें रखना और शुद्ध योगवाई मिलने से स्वहस्त द्वारा दान देना श्रावकों का कर्त्तव्य है; आलश्य तजके किस प्रकार दान देणा और इसका उद्यम कैसे करना सो कहते हैं।

ढाल जीवमोह अनुकम्पा न आणिये

॥ एदेशो ॥

बारमूं व्रत छै श्रावक तणूं। तिणरो सांभल जो विस्तारजी॥ समण निग्रन्थ अणगारनें। देवो चिहूं विध शुद्ध आहारजी॥ इम व्रत निपजावै बारमूं॥ १॥ वले वस्त्र पात्र नें काम्बलो। पाय पूछणूं देवै एमजी॥ पीठ फलग सिज्या नें सांथारो। देवै औषध भेषज जेमजी॥ इम॥ २॥ इत्यादिक वस्तु कल्पै तिका। साधां नें दोधां हर्षित होयजी॥ जाणें धन दीहाड़ो धन घड़ी। बारमूं व्रत नीपनूं मोयजी॥ इम॥ ३॥ करै चिन्तवनां साधां तणी। घरमें देखै शुद्ध आहारजी॥ वलि भांणै बैठ भावै भावनां। व्रत धारीरो यो आचारजी॥ इम॥ ४॥ साधु आय ऊभा देखै आंगणें। विकसै सघली रोम-रायजी॥ अशणादिक देवै भावसूं। घणुं मन रलियायत थाय जी॥ इम॥ ५॥ काचा पाणी सूं थाली धोवै नहीं। वले सचित न राखै पासजी॥ संघटै नहिं बैसै सचितरै। व्रत निपजावणरो हुल्ला-सजी॥ इम॥ ६॥ कांई काम पड़ै आय सचितरो। जब पिण समता राखै विख्यातजी॥ दिश अवलोक्यां

विण साधुरी । नहिं घाले सचित में हाथ जी ॥ डूम ॥ ७ ॥ कल्पै ते वस्तु पड़ी असूझती । कदे सहजैं सूझती होय जी ॥ तो खप करि राखै सूझती । सचित ऊपर न मेलै कोयजी ॥ डूम ॥ ८ ॥ जे जे द्रव्य जाणै छै सूझता । कल्पै ते साधूनें जाणजी ॥ तिणरी भावै निरन्तर भावना । एहवा श्रावक चतुर सुजाणजी ॥ डूम ॥ ९ ॥ चित्त वित्त पात्र तीनूं तणुं । कदे आय मिलै संजोगजी ॥ जब अडलक दान दे हाथ सूं । पछे न करै पिछतावो सोगजी ॥ डूम ॥ १० ॥ जे जे व्रत धारी श्रावक हुवै । ते जीमतां न जड़ै किमाड़ जी ॥ उववाई नें सुयगड़ा अङ्ग मैं । त्यांरा चाल्या उघाड़ा द्वारजी ॥ डूम ॥ ११ ॥ सहिमैं उघाड़ा हुवै बारणा । जब राखै उघाड़ा तांमजी ॥ नहिं जड़ै उघाड़ा बारणा । साधां नें दान देवा कामजी ॥ डूम ॥ १२ ॥ और भेष उघाड़ मांहि धसै । साधू न आवै खोल किंवार जी । तिण सूं व्रत धारी श्रावक हुवै । ते तो राखै उघाड़ा द्वारजी डूम ॥ १३ ॥ सहजी आया छै घर आपणै । नीपनूं देखि शुद्ध आहारजी ॥ जब काल जाणैं गोचरी तणुं । तो वो बाट जोवै तिण वारजी ॥ डूम ॥ १४ ॥

॥ भावार्थ ॥

बारवांव्रत श्रावक का है वो कसे निपजता है सो कहते हैं—

श्रमण निग्रन्थ श्रणगार को असाण १ पाण २ खादिम३ स्वादिम ४ वस्त्र ५ पात्र ६ कम्बला ७ पद पूंछणा ८ पीढ ६ फलग १० सेज्भा ११ संथारो १२ औषध १३ भेषज १४ इत्यादिक कल्पती वस्तु अर्थात् जो साधू को लेने जोग दोषरहित हो सो देने से बारमां व्रत निपजता है, उपरोक्त प्रासूक वस्तुवो को देके श्रावक अत्यन्त हर्षायमान होय, विचारे कि आज का दिन और घड़ी धन्य है ऐसे सत्पुरुषों को योगवाई मिलने से मेरे बारमा व्रत हुआ, तथा जब अपने घरमें सूझता असनादि देखे तब अथवा जीमते वक्त साधू मुनिराज की भावना भावे आहार पानी आदि जो जो वस्तु साधुवों को कल्पती है उन्हें सूझती देखे तब विचार करै कि इस वक्त यदि मुनिराजों का योग मिले तो स्वहस्त से दान दूं तब मनका मनोरथ फलै, जीमने को बैठे तो एक दम मुख में नघालै साधुओं की राह देखै, जीमते समय सचित पानी से थाली न धोवैं सचितका संघट्टा न रखे कदा उसही वक्त साधू पधार जाय तो हर्ष सहित व्रत निपजावै, साधुवों को वस्तु कल्पै सो असूझती पड़ी होय तो वो साधुवों के लिये सूझती न करैं यदि स्वतःही सूझती हो तब उसे सूझती रखें और उन वस्तुवों को साधू को वहराने की भावना निरंतर रखैं योग मिलन से अढलक दान अर्थात जितनी चायना साधू को हो वो हर्ष सहित भरपूर देवैं, और व्रतधारी श्रावक हो वो जीमने समय द्वार के कपाट न जडैं उववाई सूत्र में श्रावकों के उघाडे द्वार कहे हैं क्योंकि द्वार बंध होय तो द्वार खोलके साधू अन्दर नहीं आते हैं दूसरे भेष वाले तो द्वार खोल के अन्दर भी आहार लेनेको आ जाते हैं परन्तु साधू मुनिराज तो कपाट खोलते जडते नहीं इसलिये श्रावकों के उघाड़े द्वार कहे हैं यदि जड़े हुए किवाड़ हो तो उन्हें साधुवों के निमित्त न खोलैं अपने कार्य के निमित्त खुलें तब उन्हें न जुडें और साधू मुनिराजों की भावना रखैं ये व्रतधारी का आचार है।

॥ ढाल तेहिज ॥

ज्यांरै हूंसघणी छै मांहिली। पोतै सहाथ देवा दानजी॥ त्यांरा हृदय में साधु बसरह्या। ते किण विध सूंके ध्यानजी॥ इम॥ १५॥ असणादिक थाली में लोधांपछै। तुरत घालै नहिं मुख मांयजी॥ दिशि अवलोके भावे भावना। जाणे साधु पधारै आयजी॥ इम॥१६॥ इण विधि भावना भावतां थकां। मिलै सतगुरूनों जोग वाईजी, तो उ दान दे उलट परिणामसूं। चूकै नहिं अवसर पाईजी॥ इम॥१७॥ शक्तिसारु दान दे साधुने। पिण न करे कूड़ी मनवारजी। ठालो बादल ज्युं गाजै नहीं। सांचै मन बोलै शुद्ध विचारजी॥ इम॥ १८॥ अछलक दान देई साधुने। पोमावे नहिं औरां पासजी॥ गिरवो गम्भीर रहै सदा त्यांने वीर बखाण्यां तासजी॥ इम॥ १९॥ अछलक दान देणुं पातरै। नहिं जिण तिणने आसानजी॥ दान देवाणे ध्यान रहै सदा। एहवा विरलाछै बुद्धिवानजी॥ इम॥ २०॥ आछी वस्तु गोप राखै नहीं। न आणें लोलपणों ने लोभजी॥ गमती वस्तु देवै साधु ने। पिण कूड़ी न साधै सोभजी॥ इम॥ २१॥ आप खावें ते अवतमें गिणें।

तिणसूं बंधता जाणे पाप कर्म जी॥ दान सुपात्र ने दिया। जाणे संवर निरजरा धर्मजी॥ इम ॥ २२ ॥ सुपात्र दान देवै तिण अवसरै। लेखो न करै मन म्हांयंजी॥ लेखो कियांसूं तो लोभ उपजै। अडलक दान दियो नहिं जायजी॥ इम ॥ २३ ॥ लाडू धोवणादिक वहिरायतां। राखै एक धारा परिणामजी॥ व्रतधारी आयो कांडै नहिं। रूड़ी जोगवाई पामजी॥ इम ॥ २४ ॥ कदा वहरियां विन पाछा फिरै। काई आय पड्यां अन्तरायजी॥ जव पछतावो कियां पुन्य वन्धै। वलि कर्म निर्जरा थायजी॥ इम ॥ २५ ॥ पिछतावो कियां ही पुन्य वन्धै। तो वहिरायां हुवै लाभ अनन्तजी॥ उत्कृष्टो तीर्थंकर पद लहै। इम भाष गया भगवन्तजी॥ इम ॥ २६ ॥ सूझती वस्तु न करै असूझती। तेतो दान देवारै कामजी॥ असूझती न करै सूझती॥ वहिरावणरा आणि परिणामजी॥ इम ॥ २७ ॥ जाणिने न देवै असूझतो। करड़ो पिण वणियां कामजी॥ निर्दोष दीधी वस्तु हाथसूं। पाछी लेवारी नहिं हामजी॥ इम ॥ २८ ॥

॥ भावार्थ ॥

जिन्होंके मुनिराज को स्वहस्तद्वारा दान देनेकी हूंस अर्थात् हर्षाभिलाषा है उन्हों के हृदय में हमेशा साधू वस रहे हैं वोह ध्यान उनके

चित्त से कैसे दूर हो सकता है उनके तो खाते पीते वक्त यही ध्यान रहता है कि इस वक्त साधू पधार जाय तो दान देऊं इसलिये श्रावक जीमते वक्त भाणें बठे तब जलदी करके साधू की भावना भायें बिना मुख में आहार न घालैं राह देखते यदि साधू पधार जांय तो दान देके अत्यन्त खुश होके बिचारे कि आज का दिन धन्य है सो मेरे बारमां व्रत निष्पन्न हुआ, दान देके दूसरों के पास अपनी तारीफ न करें कि मैं बड़ा दानेश्वरी हूं तथा साधूवों के पास अपनी सेखो भी न करे जैसे देनेका भाव तो नहीं और कहैं कि महाराज मेरे पास आप को कल्पती वस्तुवों बोहत है जो चाहे जो लीजिये कदा साधू को चाहिये तो लेना स्वीकार करें तब हाथ धूजने लग जाय ऐसी झूंठी मनवार श्रावक को नही करनी चाहिये तथा अच्छी वस्तुको छिपा के खराब वस्तु भी साधू को नहीं धामना चाहिये अर्थात् अपना लोलपी पणा छोड़के साधुवों को इच्छित आहार पानी आदि बहिराना सो बारमां व्रत है, सुपात्र को अडलक दान देना हरेकको आसान नही है दिल के ओछे आदमियों से या लोभी पुरुषों से सुपात्र दान नहीं दिया जाता है इसलिये श्रावकों को चाहिये कि निरदोष आहार पानी आदि चौदह प्रकार का दान मनकी उत्साह सहित गहर गम्भीर दिल से देवें, उन्हों की ही भगवन्तों ने सराहना की है शास्त्रों में कहा है शुद्ध दान देनेवाले महा दुर्लभ हैं, श्रावक स्वयं भोजन करे सो अव्रत में जाने जिससें अशुभ कर्मों का बंध और शुद्ध साधू निर्ग्रंथ को देवे उससे अशुभ कर्मों की निरजरा होके शुभ कर्म जो पुण्य है सो बंधता है और व्रत संवर धर्म होता है, तब ही तो श्रावक के हमेंशा यही अभिलाषा रहती है कि मैं मुनिराजों को प्रतिलाभूं सो दिन धन्य है कदा वस्तु असूझती हो जाय और साधू बिना बहरिया ही चले जाय तब बहुत पश्चाताप करे विचार करे कि देखो मैं कैसा अभागी हूं, पश्चाताप करने से अशुभ कर्मों का नाश होके पुन्य बंधता है सो साधुवों को बहराने से तो महाफल प्राप्त होता है उत्कृष्ट भांगे तीर्थंकर पद पाता है, इसलिये

हमेशा भावना रखनी चाहिये लड्डू आदि मिष्ठान तथा धोवण आदि पानी वहराते वक्त एकसा परिणाम रखना चाहिये सूझती को असूझती और असूझती वस्तू को सूझती करिके कदापि नही देना तथा असूझती वस्तु तो साधूवों को हरगिज किसी भी हालत में नहीं देना क्योंकि असूझना देने से तो एकान्त पाप ही होता है।

॥ ढाल तेहिज ॥

दान देवण देवावण कारणें। कदे अतीक्रमे नहीं कालजी ॥ मच्छर मान वड़ाई छोड़ने। दान देवे दूषण टालजी ॥ इम ॥ २९ ॥ आपणी वस्तु कहै पारकी। दान देवा न देवा कामजी ॥ धर्म ठिकाणें भूंठ बोलैं नहीं। सूंड़े कोरी न राखे मांमजी ॥ इम ॥ ३० ॥ इग्यारे व्रततो त्याग किया हुवे। वारमूं व्रत दोषां होयजी ॥ तिणसूं कठिन काम इण व्रतरो। विरला निपजावे कोयजी ॥ इम ॥ ३१ ॥ सुपात्र दान देवे तेहने। निपजे तीन बोल अमोलजी ॥ संवर निरजरा हुवे पुन्य वंधे। त्यारों अर्थ सुणो दिल खोलजी ॥ इम ॥ ३२ ॥ जे जे वस्तु वहरायां साधू ने। तिण द्रव्यरी अव्रत न रही कांयजी ॥ ते व्रत संवर हुवे इण विधे। शुभ जोगां से निरजरा थायजी ॥ इम ॥ ३३ ॥ शुभ योग वर्त्यां हुवे निरजरा। शुभ जोगां सी पुन्य वन्ध जातजी ॥ पुन्य सहजे हुवे निरजरा कियां। जिम खाखलो

हुवे गेहुं री साथजी ॥ द्रुम ॥ ३४ ॥ उत्कृष्टे परिणामां दान दे। तो उत्कृष्टी टले कर्म कोतजी ॥ उत्कृष्टा बंधे पुन्य तेहने। वलि बंधे तीर्थंकर गोतजी ॥ द्रुम ॥ ३५ ॥ जो उणारे पुन्य उदय हुवे इण भवे। दुःख दारिद्र दूर पुलायजी ॥ ऋद्धि सम्पदा पामें अति घणी। सुख साता में दिन जायजी ॥ द्रुम ॥ ३६ ॥ जो उदय न आवे इण भवे। तो पर भवमे शंका मत जाणजी ॥ ऊंच गोतादिक सुख भोगवे। इण दान तणा फल जाणजी ॥ द्रुम ॥ ३७ ॥ पुन्यरीं वंछा करि देवे नहीं। समदृष्टि साधां ने दानजी ॥ देवे संवर निरजरा कारणे। पुन्यतो सहजी लागे आसानजी ॥ द्रुम ॥ ३८ ॥ अव्रत में देतां थका। पड़े श्रावकरे मन धरकजी ॥ ज्यांने दान दिया व्रत नीपजे। त्याने दीठां ही पामें हरखजी ॥ द्रुम ॥३९॥ काम पडे अव्रत में दानरो। जब देतो ही शरमां शर्मजी ॥ पछे करै पिछतावो तेहनूं। कांयिक ढीला पड़े कर्मजी ॥ द्रुम ॥ ४० ॥ अव्रत में दान दे तेहनूं। टालणारो करै उपायजी ॥ जाणें कर्म बंधे छे म्हांयरे। तीने भोगवतां दुःख दायजी ॥ द्रुम ॥ ४१ ॥ अव्रत में दान देतां थकां। बंधे आठूं ही पाप कर्मजी ॥ सुपात्र ने दान दिया थकां। म्हारे संवर निरजरा

धर्मजी ॥ इम ॥ ४२ ॥ अव्रत में दान देवा तणूं । कोई त्याग करै मन शुद्धजी ॥ तिणरो पाप निरन्तर टालियो । तिणरी वीर वखाणी वुद्धिजी ॥ इम ॥ ४३ ॥ कुपात्र दान मोह कर्म उदै । सुपात्र दान क्षयोपशम भावजी ॥ व्रत निपजै सुपात्र दान थी । तिणरो जाणों समदृष्टि न्यायजो ॥ ४४ ॥

॥ भावार्थ ॥

पुन दान देने की विधि कहते हैं—मत्सर भाव मान बड़ाई छांड़ि के निरदोष दान दे अपनी वस्तु को पराये की वस्तु दान देने या न देने के निमित्त न कहै अर्थात् यह धर्म कार्य में झूठ न बोलें, इग्यारे व्रत तो त्याग करने से और वारमां व्रत शुद्ध साधू निग्रंथ को निर्दोष दान देने से होता है इसलिये इस व्रत का निपजाना महामुश्किल है कोई विरले समझदार ही निपजा सकता है इस वास्ते इसके निपजाने की विधि स्वामी ने विस्तार पूर्वक कही है सुपात्रदान देने वाले को तीन बोल निपजते हैं प्रथम तो जो वस्तु साधू को वहराई उसकी अव्रत मिट गई सो तो व्रत हुआ तब कोई कहै सिर्फ साधूको देने से ही अव्रत क्यों मिटी और श्रावक आदि दूसरे जीवों को देने से अव्रत क्यों नहीं मिटी। उसका उत्तर यह है कि साधू के सर्वथा प्रकार अव्रत सेने सेवाने और अनुमोदने का त्याग है साधू कलपती वस्तु भोगें सो उनके व्रत में हैं साधू आहार पानी आदि जिन आज्ञा प्रमाण करैं सो संयम यात्रा निरवाहनार्थ करते हैं जिससे महाव्रतों की पुष्टी और मुक्ति का साधन होता है निरदोष अहार पानी आदि की याचना करि के लेवैं सो तो तीसरा महाव्रत की अराधना है श्री प्रश्न व्याकरण सूत्र में कहा है तथा राग द्वेष वरज के विधि पूर्वक भोगें सो अहिन्सा आदि पाचू ही महाव्रतों की पुष्टी और अराधना है इसलिये साधुवों को

देने से तो श्रावक के बारमां व्रत संवर होता है और श्रावक आदि ग्रहस्थों को देने दिलाने और अनुमोदने से अव्रतास्रव है ग्रहस्थ आप भोगे सो भी अव्रत है भोगावें और अनुमोदें सो भी अव्रत है उववाई सुयगडा अंग आदि सूत्रों में खुलासा कहा है इस लिये सुपात्र दान देने में अव्वल तो संवर होता दूसरे साधू को वहरायें शुभ जोग बर्तें जिससे अशुभ कर्मों की निरजरा होती है, तीसरे शुभ जोग बर्तने से पुण्य बंध होता है, उत्कृष्ट भावों से दान देते उत्कृष्ट भांगे तीर्थंकर गौत्र बंधता है। इस भव में पुन्योदय होने से दुःख दारिद्र दूर होता है। ऋद्धि सम्पदा सुख साता मिलती है, कदा इस भव में पुण्य उदय न होवे तो पर भव में तो अवश्य ऊंच गौत्रादि पुण्य प्रकृतियां होवेहीगी उस पुन्योदय से अनुक्रमें भली २ योगवाइयां मिलने से सर्व कर्मों का नाश करिके सिद्ध गति प्राप्ति होती है शुद्ध दान का ऐसा फल है, परन्तु पुन्य की वान्छा करिके समदृष्टि दान न देवें सिर्फ संबर निरजरा निमित्त दान दें जिससे पुन्य तो सहज सुभाव लगते ही हैं जैसे गेहूं के साथ खाखला होता है, वैसे ही निरजरा होते वक्त शुभ योग वर्तने से पुण्य होता है, इसलिये श्रावक के सर्व व्रतधारी संयती को दान देने से अत्यन्त हर्ष होता है और अव्रत में दान देते मन धड़-कता है, अव्रत में दान देता है सो तो लौकिक व्यवहार से या शर्मा शर्मी से देता है सावद्य दान से अशुभ कर्मों का बंध जानता है सावद्य कार्य का पश्चाताप करने से कर्म ढीले अर्थात् शिथिल पड़ते हैं, कोई वैरागी श्रावक अव्रत में दान देने का शुद्ध मन से त्याग करें तो उसके इस अव्रत का पाप निरंतर टलता है, तात्पर्य कुपात्र दान है सो मोह कर्म के उदय से हैं और सुपात्र दान है सो क्षयोपशम भाव है सुपात्र दान से श्रावक के बारमां व्रत निपजताहै तथा अशुभ कर्मोंकी निरजरा होती है इसका न्याय समदृष्टि ही जानते हैं, इस लिये सुपात्र की विधि पुनः वर्णन करते हैं।

॥ ढाल तेहिज ॥

सहिजे जागां पड़ी हुश्रे सूझती। जब जोवे साधांरी बाटजी ॥ तिणरे कर्म तणीं निरजरा हुश्रे। वले बन्धे पुन्यरा थाटजी ॥ इम ॥ ४५ ॥ वाट जोवतां साध पधारिया। सेज्झा दान दे हर्षित थायजी ॥ जाणें धन दिहाड़ो धन घड़ी। म्हारे साधु उतरिया आयजी ॥ इम ॥ ४६ ॥ सेज्या दान देई शुद्ध साधुने केई करे प्रति संसारजी ॥ केई बन्ध पाड़े शुद्ध गति तणूं। तेतो पामे भवजल पारजी ॥ इम ॥ ४७ ॥ सिज्झा थानक दीधां साधुने। आगे तिरग्रा जीव अनन्तजी॥ वलि तिरग्रानेतिरसी घणां। इम भाषगया। भगवंतजी ॥ इम ॥ ४८ ॥ दियां देवायां भलो जाणियां निरदोष सुपाच दानजी ॥ ब्रत निपजे दीधां वस्तु आपरी इम भाष्यो श्रीभगवानजी॥ इम ॥४६॥ पुत्र त्रियादिक। मा बापरा। परिणाम चढावे विशेषजी ॥ त्यांने दान देवा सनमुख करे। शिखावे शुद्ध विवेकजी ॥ इम ॥ ५० ॥ पुत्र त्रियादिक मा बापरा। दान देवारा रहे परिणामजी ॥ त्यांसूं हेत राखे जिन धर्मरो। शुद्ध श्रावक तिणरो नामजी ॥ इम ॥ ५१ ॥ घडलक दान देतां देखी औरने। त्यांरा पाडे नहिं परिणा-मजी ॥ कदा देणी न आवे आपसूं। तो करे तिणरा

गुण ग्रामजी ॥ इम ॥ ५२ ॥ गुण सहणो न आवे दातारगा। पोते पिण दिणो नहीं जायजी ॥ ये दोनूं अवगुण दूरा तजै । श्री जिनवर नुं धर्म पायजी॥ इम ॥ ५३ ॥ औराने दान देतां देखने। कोई वरज पाड़ै अन्तरायजी ।। तो उत्कृष्टो बांधे महा मोहणी। एहवो श्रावक न करै अन्यायजी ।। इम ।। ५४ ।। कोई अन्य तीर्थी जीमें नहीं। त्यांरा ठाकुर ने बिन दीधां भोगजी ।। नित्यबारै रसोई काडिने। पोषे जपुरा-दिक लोगजी ।। इम ।। ५५ ।। त्यांनें ठीक नहीं त्यांरा देवरी। देव लेवे न लेवे भोगजी ।। तोही राखै छै त्यांरी आस्था। नित बर्त्तावे त्यांरो जोगजी॥ इम ॥ ५६ ॥ तो व्रतधारी शुद्ध श्रावक तणुं। धर्मसूं रंग्यो छे तन मनजी ।। ते गुरुनी भावना भायां बिना। मुखमें किम घाले अन्नजी।। इम ।। ५७ ।। कोईकांरे गुरु छे अन्य तीरथी। त्यांरी करै साचे मन टैलजी ।। तो साधु पधारयां आंगणें। त्यांनें श्रावक नहीं गिणें सहेलजी ।। इम ।। ५८ ।। कोई कहै दान धणूं दिढावियो। ये तो लेवारो कियो उपायजी ॥ एहवा ऊंधा बोलै शुद्धि बुद्धि बिना। पिण श्रावक न काढै वायजी ॥ इम ॥ ५९ ॥ दान देवारा परिणाम जेहना। ते तो सुण २ हर्षित

घायजी ॥ कहे व्रत निपावारी विधि। मौनें सत-गुरु दोनी वतायजी ॥ इम ॥ ६० ॥ और व्रत कह्या देवल समां। सिखाव्रत के सिखा ममानजी ॥ त्यांमे सघला सिरे व्रत बारमूं। तिणारी बुद्धिवन्त करसी पिछाणजी ॥ इम ॥ ६१ ॥ तिण्या तिरे तिरसी घणा। इण दान तणे प्रतापजी ॥ तिणमें शंका मूल न आणवी। श्रीजिन मुख सुं भाख्या आपजी ॥ इम ॥ ६२ ॥ सूत्र पुराण कुरान में। पात्र दान तणूं अधिकार जी ॥ तैं पात्र कुपात्र ने ओलखो। बुद्धिवन्त काढै निस्तार जी ॥ इम ॥ ६३ ॥ वले कहि २ ने कितरा कहूं। इणदान तणा गुण ग्रामजी। क्रोड जिह्वा करि वरणव्यां। पूरा कहिणी न आवे तामजी ॥ इम ॥६४॥ जोड कीधी बारमां व्रतरी। तेतो गुदवा शहर मझार जी ॥ सम्वत् अट्ठारह बत्तो-स मे। वैशाख सुद बीज मंगलवारजी ॥ इम ॥६५॥ इति ॥ स्वामी भीखन जी शोभता। जोड़ै सूत्ररो न्यायजी ॥ भव जीवांने प्रति बोधवा वारै व्रत दिया ओलखायजी ॥ इम ॥६६॥ इति द्वादश व्रतोंकी जोड़ स्वामी श्रीभीखनजी कृत।

॥ भावार्थ ॥

अपना मकान खाली होय उस में सचितादि विखर नहीं रही होय

प्रासूक होय तब श्रावक भावना भावै कि साधू पधारै तो मैं यह सेम्का दान देके व्रत निपजाऊं कदा साधू पधार जायंतो जायगां देके मन में अत्यन्त हर्षित होय विचार करैं कि आज का दिन और आज की घड़ी धन्य हैं सो मेरे ऐसी योगवाई मिली मेरे यह मकान उपभोग मे आता था या अन्य अव्रती को उपभोग कराता था जिस से तो पाप लगता था अब सर्व व्रतियो के काम आरहा है सो व्रत निपज रहा है, यह दान देना महा मुश्किल है इस दान से अनन्त संसारी का प्रति संसार हो के शुद्ध गति प्राप्त होती है, सझ्का दान साधुवों को देने से गतकाल में अनन्ते जीव संसारमयी समुद्र से तरे बर्तमान में तर रहे हैं और भविष्यत् काल में अनन्ते जीव तरेंगे, सुपात्रो को अपनी बस्तु देने से बारमां व्रत होता है दिलाने और अनुमोदने से निरजरा धर्म होता है ऐसा जानेके पुत्र स्त्रियां मा बाप आदि परिवार वालों को सुपात्र दान देने की विधि सिखलाना और दान देने वालों से धम का प्रीती रखना यह श्रावक का कर्त्तव्य है इस लिये सुपात्र दान देने वालों से धर्मराग रखना शुद्ध श्रावक उस ही का नाम है, जो कदा अपने से न देणी आवैं तो देने वालों का परिणाम शिथिल न करै उनके गुन ग्राम करने से धम होता है सुपात्र दान के दातार का गुन सहन न करना तथा आप न देना यह दोनूं अवगुण है श्री जिन धर्म पाके इन्हें तजैं और देते हुए को अंतराय न करैं अंतराय देने से महा मोहनीय कर्म बंधता है, देखो केई अन्य तीर्थ भी ऐसे नित्य नियमी है कि ठाकुरजी के भोग लगाये विना नहीं जीमते हैं अलवत्ता उनको यह मालूम तो नहीं है कि वो परमेश्वर निरंजन निराकार जोतिस्वरूपी अशरीरी भोजन करते हैं या नहीं परन्तु प्रतीत रखके भक्ति करते हैं तथा केई अन्यमती अपने गुरूकी सेवा सुश्रूषा भक्ति अनेक प्रकार से करते हैं तो व्रतधारी श्रावक निरलोभी निरलालची निष्परिग्रही शुद्ध साधू मुनिराजों की अशणादि चौदह प्रकार का दान निरदोष देके सेवा भक्ति अवश्य करै, यही उपदेश है, तब कोइ कहै अपने लेनेके लिये दान को प्रशंसा बहोत की है ऐसो

उलटी बात निरबुद्धि कहै, किन्तु श्रावक तो कहै कि हमें सद्गुरुवों ने दान देने की विधि अनुग्रह करिके बताई है, क्योंकि इग्यारे व्रत तो श्रावक जी चाहे जब निपजा सकता है परन्तु बारमां व्रत सर्व व्रतों में श्रीकार धजा समान है सो तो साधू की योगवाई मिलने से ही होता है शास्त्रों में कहा है "दुल्हाउं मुधादाई" अर्थात् शुद्ध दानके दातार दुर्लभ है सूत्रमें पुरान में कुरान में सब मतों में सुपात्र दान की प्रशंसा है सुपात्र दान देके अनन्ते जीव तिरे तिर रहे हैं तथा अनन्ते जीव तिरेंगे ऐसा जानके सुपात्र कुपात्र को यथार्थ पहिचान करिके सुपात्र दान देना चाहिये; यह बारमा व्रत की जोड़ स्वामी श्रीभीखनजी ने गुदवा शहर में सम्वत् १८३२ मिती वैशाख सुदी ३ मंगलवार को करी जिसका भावार्थ मैंने मेरी तुच्छ बुद्धि अनुसार किया है इस में कोई अशुद्धार्थ हो जिस का मुझे त्रिविध २ मिच्छामि दुक्कडं है।

॥ कलश ॥

॥ चाल त्रोटक छन्द ॥

यह द्वादशूं व्रत आखिया जिन भाखिया आगम सही। तसु ढाल बंध सुजोड़ नीकी स्वाम श्री भीखू कही॥ तेहनुं भावारथ जाण लह्यो कह्यो गुलाब श्रावक इम सही। धारिये दुःख टारिये श्रीकालूगणी सुपसायही॥ १ ॥

आपका हितेच्छु
जौहरी गुलाबचन्द लूणिया
जयपुर

॥ अथ ९९ अतिचार ॥

दोहा ।

चौदह अतिचार ज्ञानरा। पांच समकितरा जान। साठ बार व्रतां तणा। पन्दरा कर्मादान ॥१॥ सलेषणानां पांच छे। ये निन्नाणूं अतिचार॥ टाले सघला भावसुं। जो पामे भवपार ॥ २ ॥

॥ ढाल ॥

म्हेतो वीर वांदणनें जावस्यां। तथा धर्म दलाली चित करै ॥ एदेसी ॥

अतिचार लागे ज्ञान ने ते गिणतां चौदह थाय हो श्रावक जन॥ जवाइर्धं बच्चा मेलियं। हीण अक्षर अधिक बोलाय हो॥ श्रा॥ अतिचार लागे ज्ञानने ॥ श्रा ॥ १ ॥ पद हींणो विनय हींणो करै। जोग हींण घोष हीण थाय हो ॥ श्रा ॥ सुट्ठु दीनं दुट्ठु पड़िच्छयं। अकाले करै सज्झायहो ॥ श्रा ॥ ॥ २ ॥ काले सज्झाय करै नहीं। असज्झाय मे करै सज्झाय हो ॥ श्रा ॥ सज्झाय वेलां आलश करै। जब ज्ञान थांरो मैलो थाय हो ॥ श्रा ॥ ३ ॥ हिव समकित नां दूषण कह्या। पांच मोटा अतिचार हो ॥ श्रा ॥ जाणै पिण आदरै नहीं। पालै निर अति-

चार हो ॥ श्रा ॥ अतिचार लागै समकित भणी ॥ ४ ॥ भगवन्त भाख्या ते सुणि करै। शंका कंखा विद्गंछ हो ॥ श्रा ॥ कुगुरु प्रशंसा जे करै मिथ्या संग करै मन वंछ हो ॥ श्रा ॥ अ ॥ ५ ॥ दूषण लागै व्रतां भणी। ते पांच २ अतिचार हो ॥ श्रा ॥ जाणें पिण आदरै नही। पालूं शुद्ध आचार हो ॥ श्रा ॥ अ ॥ ६ ॥ जीव बांधे मारै निरदय पणें करै कानादिक छवी छेद हो ॥ श्रा ॥ घणूं भार पर खेपवे। करै भात पांणीनुं विच्छेद हो ॥ श्रा ॥ अतिचार लागै व्रतां भणीं ॥ ७ ॥ ज्यां ज्यां जीव मारणरा त्याग छै। त्यां त्यां जीवांरा पांच अतिचार हो ॥ श्रा ॥ ज्यां ज्यां जीव मारणो आगार छै। त्यांनें मारयां नही दोष अतिचार हो ॥ श्रा ॥ अ ॥ ८ ॥ अण विचारयो कूड़ो आलदे। छानीवात प्रकाशै तेह हो ॥ श्रा ॥ मर्म भेद कूड़ी साख दे। कूड़ा लेखा करै जेह हो ॥ श्रा ॥ अति-चार दूजाव्रत नें ॥ ९ ॥ जिण २ झूंठ बोलणरा त्याग छै। तिण बोल्यां पांच अतिचार हो ॥ श्रा ॥ जिण-२ झूंठ बोलणरो आगार छै। तिण बोल्यां दोष न लिगार हो ॥ श्रा ॥ अ ॥ १० ॥ चोरी वस्तु ले चोरां साझदे। वलि भांजे राजारो दाण हो ॥ श्रा ॥ कूड़ा तोला कु मापाकरै। भेल सभेल दगो दे जाण

हो ॥ श्रा ॥ अतिचार तीजा व्रतनें ॥ ११ ॥ जिण २ भांगे चोरीरा त्याग छे ॥ तिण भागे लागे अतिचार हो ॥ श्रा ॥ जिण भांगे चोरी आगार छे। तिणमें व्रत भङ्ग नाहीं लिगार हो ॥ श्रा ॥ १२ ॥ थोड़ोई काल परिग्रही अपरिग्रही थकी। गमन कीयो हुवे चाहि हो ॥ श्रा ॥ अनेक क्रीड़ा कीधी तेहसुं। पर विवाह दीनो हुवे राय हो ॥ श्रा ॥ अतिचार चौथा व्रतनें ॥ १३ ॥ वलि काम भोगरो वञ्छा थका। तीव्र अभिलाषा कीधो हुवे त्याय हो ॥ श्रा ॥ ज्याने त्यागा त्यांरो सेवन कियां। अतिचार कह्या जिनराय हो ॥श्रा॥ श्र॥ ॥१४॥ जिण भांगे चौथोव्रत आदरो। ते भांगो भाग्यां अति चारहो ॥श्रा॥ जे जे भांगा छूटा राखिया। ते सेव्यां नहिं दोष लिगारहो ॥श्रा॥१५॥ खेत वथु हिरण सुव्रण तणों। मरयादा देवे लोपाय हो ॥श्रा॥ धन धान द्विपद चौपद वधे। कुम्भी धातु अधिक राखे रहायहो ॥श्रा॥ अतिचार पांचमांव्रतने १६ ऊंचो दिशि उलंघे मर्याद थी। नीची तिरछी इम उलघाय हो ॥श्रा॥ एक दिशि दूजी में मेलवो। दिशि संख्याव्रत भंगायहो ॥श्रा॥- अतिचार छट्टाव्रत ने ॥ १७ ॥ त्याग्या सचित द्रव्यादिक भोगवे। वलि भेल सभेल करि खाय हो ॥श्रा॥ गहणा कपड़ादिक अधिका भोगवे। उपभोग

परिभोग अधिक सेवायहो ॥श्रा॥ अतिचार सातमां व्रतने ॥१८॥ इंगालि कम्मादिक जे कह्या। पनराहो कर्मादान हो ॥श्रा॥अ॥ १९ ॥ काम कथा कुचेष्टा करै वलि बोलै मुख अरिवाय हो ॥ श्रा ॥ अधिकरण जोडि करै एकठा। उपभोग परिभोग वधायहो ॥श्रा॥ अतिचार आठमां व्रतने ॥२०॥ एह पांचूंहो अनर्थे सेवियां जब लागै अतिचार हो ॥श्रा॥ अर्थे पिण सेव्यां पापछै। पिण व्रतने नहीं दोष लिगार ॥ श्रा ॥ अ ॥ २१ ॥ मन वच कायानां जोगने। पाडुआ प्रवर्ताय हो ॥ ॥श्रा॥ समाई में समता न करि हुवै। अण पूगी पारी हुवै समायहो ॥श्रा॥ २२ ॥ त्यागी वस्तु बाहर थी अणा-यले। वलि पाछी दे मोकलायहो ॥ श्रा ॥ शब्द रूप दिखाय मानी करै। पुद्गल नाखी आपो जणायहो ॥श्रा॥ अतिचार दशमा व्रतने ॥२३॥ सेज्झा संथारो अपडि दुपडि लेवै। अण पूंजै पूंजै विपरीतहो ॥श्रा॥ इम उचारा दिकनौं भूमिका पौसो पालै नहीं रूडी रीतहो ॥ श्रा ॥ अतिचार इग्यारमां व्रतने ॥२४॥ सचित मूंक्यो ढांक्यो वहरायदे। अतिक्रम कालनूं मानहो ॥श्रा॥ आपणी वस्तु पारकी करै। वलि देवै मच्छर दानहो ॥श्रा॥ अतिचार बारमां व्रतने ॥२५॥ सूझतो वस्तु करै असूझती। असूझती करै सूझती

तामहो ॥श्रा॥ दान देवा न देवा कारणैं। बारमूव्रत भांगे आमहो ॥ श्रा ॥ श्र ॥ २६ ॥ एह लोक परलो- करो बान्छा करै। जीवण मरणूं बन्छे तामहो ॥श्रा॥ काम भोग तणों बञ्छा करै। सलेषणा में दोष लागे आम हो ॥ श्रा ॥ एह अतिचार सलेखणानां कह्या ॥ २७ ॥ हूं चक्रिवर्त होवूंतो भलो। यह लोकरी वंछा मांहि हो ॥ श्रा ॥ हूं इन्द्रादिक पद्दो पायजो। ते परलोक वंछा ताहि हो ॥ श्रा ॥ एह अतिचार ॥२८॥ जीवणूं मरणूं बञ्छ्यां दोष छे। वलि बञ्छ्यां कामने भोग हो ॥ श्रा ॥ ये पांचूं हीं कर्तव्य पाडवा। तीनूं ही करणां ने तीन जोग हो ॥ श्रा ॥ श्र २६ ॥ सघला अतिचार भेला कियां। निव्वाणु कह्या जिन राय हो ॥ श्रा ॥ ते टालै सघला भावसूं। तो आराधक पद थाय हो ॥ श्रावक जन ॥ अतिचार सर्व इम जाणवा ॥ ३१ ॥ इति स्वामी श्री भीषनजीकृत।

॥ अथ पडिमांधारी की ढाल ॥

॥ श्रीजयाचार्य कृत ॥

॥ दोहा ॥

प्रत्यक्ष आरै पंच में। भूला धारी भेख ॥ धर्म कहै अव्रत मझे। कर रह्या कूड़ी टेक ॥१॥ श्रावक

नें जीमावियां । धर्म कहे करितांण ॥ ते व्रत अव्रत नहीं ओलख्यो । मिथ्या दृष्टि जाण ॥२॥ कहे पडिमां धारी श्रावक भणी । पोष्यां एकान्त धर्म ॥ त्यां पडिमां धर्म न ओलख्यो । भूला अज्ञानी भ्रम ॥३॥ पडिमां तो धर्म मार्ग मुक्तिरो । अव्रत आज्ञा बार ॥ निर्णय कहूं छूं तेहनों । सांभल जो विस्तार ॥४॥

या अनुकम्पा जिन आज्ञा मे ॥ एदेशी ॥

पहली पडिमां मे समकित शुद्ध पाले । पंच परमेश विना नमें नाहीं ॥ पिण सम्यक् प्रमाणें व्रत नहीं धार्या । ते अव्रत नहीं पडिमां धर्म मांहि ॥ पडिमां धार्या रो निर्णय कीजे ॥ १ ॥ बीजी पडिमां में व्रत वधारे । पिण सामायक देशावगासी करे नाहीं ॥ जे व्रत धार्या ते निरमल गुण छे । आगार ते नहीं छे धर्म माहीं ॥प॥ २ ॥ तीजी मे समकित व्रत छे निरमल ; सामाई देशावगासी पिण धारे । महिना में छः पोषा करणी न आवे । ते व्रत पडिमां अव्रत आज्ञा बारे ॥ प ॥ ३ ॥ चौथी पडिमां में पाछला गुण सघला मास मे छः पोसा शुद्ध मान ॥ पिण एक रात्री री उपाशक पड़िमां । करणी न आवे निश्चल ध्यान ॥ प ॥ ४ ॥ पांचमी पड़िमां मे पाछला गुण सघला । पिण एक रात्री री पड़िमां जाण ॥ स्नान ने रात्री

भोजन त्यागै । काछ न वालै समता आंणै ॥ प ॥५॥ दिवस नुं शील रात्रौ नी मर्यादा । ये पांचूं बोल अधिका जाण ॥ जघन्य एक दोय तीन दिवस लागै। उत्कृष्टा पांच मास पिछाण ॥ प ॥ ६ ॥ ये दिवस नुं शील ते तो छै पड़िमां । रात्रौ आगार ते पड़िमां नांहीं । आगार तेह तो अव्रत आस्रव । अव्रत छै ते तो अधर्म मांही ॥ प ॥ ७ ॥ छट्टी पड़िमां में सर्वथा शील व्रंत । पाछला त्याग तै सर्व पालै ॥ सचित खावा नुं आगार ते अव्रत । उत्कृष्टी षट मास नौं निहाल ॥ प ॥ ८ ॥ सातमी में पाछला गुण सघला । सचित खावारा त्यागज कीधा ॥ पिण आरम्भ नुं आगार ते अव्रत ॥ उत्कृष्टो सात मास प्रसिद्धा ॥ प ॥ ९ ॥ आठमीं में आरम्भ करिबो त्यागयो । पिण आरम्भ करावण रो आगार ॥ पाछला त्याग सघला शुद्ध पालै । उत्कृष्टा आठ मास विचार ॥ प ॥ १० ॥ नवमीं में आरम्भ करावणुं त्याग्यो । पिण तिणरे अर्थे कीधो भोगवै आहार ॥ उत्कृष्टी नवमास नी पड़िमां पाछला त्याग सहित सुख कार ॥ प ॥ ११ ॥ दशमीं पड़िमां में पाछला गुण सघला । पोतारै अर्थे कीधो भोगवै नाहीं ॥ खुर मुंड करावे तथा सिखा राखै । उत्कृष्टी दश महिना तांई ॥ प ॥ १२ ॥

न्यातीलारे वस्तुगम्यां तिण ने पूछ्यां । जाणतो हुवै कहै जाणूं सोय ॥ न जाणतो हुवे तो नहिं जाणूं । त्यारे सुखिये सुखे दुःखिये दुःखयो होय ॥ प ॥ १३ ॥ इग्यारमी में साधुरो भेष करि ने । पाछला त्याग पालै सुख दाय ॥ खुर मुंड तथा माथै लोच करावै । पिण न्यातीलारो प्रेमबंध टूटो नांय ॥ प ॥ १४ ॥ न्याती लारो पेज बंधन तिण कारण । न्यातीलारो घररो लेवै आहार ॥ और घरांरो लेणोरे त्यांग्यो ते व्रत छै । पिण न्यातीलारो आगार ते अव्रत धार ॥ प ॥ १५ ॥ पड़िमां धारी पांच में गुण ठाणें । तिणरी अत्याग रूप अव्रत श्रद्धे नांहि ॥ चौकड़ी स्युं देश व्रती कह्यो छै । इम कहै तिणरो जाब धारो मन मांहि ॥ प ॥ १६ ॥ सचित अचित सूझतो ने असूझतो । यां च्यारां रो अव्रत अनादिरी दाखो । सचित असूझतो त्याग्यो ते व्रत छै । बाकी आगार रह्यो ते अव्रत भाखो ॥ प ॥ १७ ॥ न्यातीला अणन्यातीलारा आहार भोगवणों । आगार ते अव्रत ठेटरो होयो ॥ अणन्यातीलारो त्याग कियो ते व्रत छै । न्यातीलारो आगार ते अव्रत जोयो ॥ प ॥ १८ ॥ अज्ञात कुलरी साधूरे गोचरी । समवायंग उत्तराध्ययन छै । साखी ॥ पड़िमा धारी रै न्यातीलारो प्रेम बंधन तिणसूं । न्यातीलारो

लेवै ते अव्रत भाखी ॥ प ॥ १९ ॥ किण क्रोड रुपयां री परिग्रह राख्यो । वलि स्त्री पुत्रादिक परिवार ॥ त्यांरो पेज बंधन रह्यो तेहिज अव्रत । सर्व छै तिणरा परिग्रहा मझार ॥ प ॥ २० ॥ सैंकड़ा गुमास्ता तिणरै कुमावे । हजारां रुपयां रो नफो पिण आवै । तिणरी अव्रतरो पाप लागै निरन्तर । अशुभ जोग रूंध्या तिणरो पाप न थावै ॥ प ॥ २१ ॥ तोटा नफारो तो मालिक तेहिज । सूक्ष्म पणै ममता भाव निरन्तर ॥ ये प्रत्यक्ष अव्रत उघाडी दीसै । बुद्धिवंत छाण करै अभ्यन्तर ॥ प ॥ २२ ॥ लाख रुपया रो परिग्रह हूंतो । ते पोता ना मन्त्री ने दियो भोलाई ॥ पछे इग्यारै पडिमां वहै तिण बेल्यां । ते रुपया छै किणरा परिग्रहा माहीं ॥ प ॥ २३ ॥ मिलरै अव्रत सहस्र नाणारी । तिणने लाखरी अव्रतरो पाप न लागै । हिव लाखरी अव्रत रो पाप किणने । ए मालिक छै पडिमां धारी सागै ॥ प ॥ २४ ॥ कदा पडिमा में तिण काल कियो तो । मिल न राखै तिणरी धणीयाप ॥ तिण धनरो धणी तो पडिमां धारी हून्तो । तिणसुं अव्रतरो तिणने कह्यो पाप ॥ प ॥ २५ ॥ तिण पडिमां धारी ने कहै पडिमां में । जावज्जीव पंच आस्रव त्यागो । जब कहै म्हारा भाव नहीं छै । तिण कारण आसा बंछा रही लागी

॥ प ॥ २६ ॥ उत्कृष्टो मास इग्यारा पाछै। कायासूं आस्रव सेवणरो आगार ॥ तिणसूं काया पिण छकायनं शस्त्र। तिणरी सार संभार ते आज्ञा बार ॥ प ॥ २७ ॥ सामाइक मांहि श्रावकरी आतमा अधिकरण। ते शस्त्र छकायनं भाख्यो। सूत्र भगवतीरै सातमां शतकै। पहिले उद्देशै श्रीजिन दाख्यो ॥ प ॥ २८ ॥ सामाइक मे धन भार्यादिक थी॥ ममता भाव प्रेज बंधन रह्यायो। आठमां शतकरै पंच में उद्देशै। धन भार्या तिणरा हिज कह्या जिनरायो ॥ प ॥ २९ ॥ तिम पडिमां में पिण धन भार्यादिकरी। ममता भाव प्रेज बन्धन जाणो। तिणसूं धन भार्यादिकरी अव्रत छै तिणनें। तिणरी पाप लागै छै निरन्तर आणो ॥ प ॥ ३० ॥ इण न्याय तिण ने कहिजै व्रताव्रती। धर्माधर्मी तिण नें कहिजै। व्रत धर्म नें अव्रत अधर्म। पिण अव्रत मे धर्म किम थापी जै ॥ प ॥ ३१ ॥ पडिमांधारी आहार करै अव्रत मे तिण नें धर्म बतावे नाही ॥ तो देणवाला नें धर्म किण विध होसी। दान दियो तिण अव्रत सेवण ताहि ॥ प ॥ ३२ ॥ धर्माधर्मी कहै पड़िमां धारी ने व्रताव्रती पिण तिण ने बतावै। वलि कहै तिणरै अव्रत नही रही बाकी। एहवा विकलां ने किम समझावै ॥ प ॥ ३३ ॥ व्रताव्रती कहै पिण अव्रत

न कहै। आपरी भाषारो आप अजाण॥ कोई कहै म्हांरी माता बांझड़ी। तिण सरिखो ते पिण मूर्ख जांण॥ प॥ ३४॥ पड़िमां धारी आहार पाणी लेवै छै। कायानीं सार करै ते सावद्य व्यापारो। तिण ने पिण सावद्य जोग न श्रद्धै श्रो पिण विकलांरै पूरो अन्धारो॥ प॥ ३५॥ जो पडिमां में सावद्य जोग नहीं बाकी। बलि अव्रत पिण थे तिणरै नहीं जाणुं। तो पडिमां में दीक्षा, लेवण री मन हुवै तो। किसा सावद्य जोगरा करै पचखाणुं॥ प॥ ३६॥ जाव जीव सावद्य जोगरा त्याग मांहि ने॥ दीक्षा लेतां इम करै पच खाणों इणरै लेखै सावद्य जोगरो आगार ते त्याग्यो। समझोरे समझो थे मूढ़ अयाणों॥ प॥३७॥ पडिमां २ करि रह्या मूरख॥ ते पडिमां तो छै श्री जिनधर्म॥ जे पडिमा आदरतां अव्रत रहि छै ते सेव्यां सेवायां बन्धसी कर्म॥ प॥ ३८॥ प्रत्याख्यानी चौकडी रहि श्रावकरै। तिण चौकडी ने कोई अव्रत जाणैं। आप छांदै ऊंधो उटका मेलै। पींपल बांधी मूरख ज्यूं ताणै॥ प॥ ३९॥ अनन्तानुबन्धी पहिलै गुण ठाणैं। अप्रत्याख्यानी चौथे गुण ठाणों। प्रत्याख्यानी पांच मे रही बाकी। छट्ठा गुण ठाणाथकी संज्वल जाणों॥ प॥ ४०॥ चौकडी ने अव्रत कहै

त्यांरे लेखे। साधू में पिण संज्वल को रही सोय। चौकडी खपावै तेहिज ब्रत श्रद्धे। तो चौथे गुणठाणें ब्रताब्रती होय॥ प॥ ४१॥ संज्वलनूं लोभ दशमें गुण ठाणें। तिण लेखै ब्रताब्रती त्यांनेंहिज कहिजे॥ जो साधुनें सर्व ब्रती मांहि घालै तो। चौकडीनूं अब्रत नांहि घापिजे॥ प॥ ४२॥ चौकडी तो छे कषाय आस्रव। तिणने अब्रत आस्रव कहै किणन्याय॥ कषाय आस्रव ने अब्रत आस्रव। जुवा २ कह्या जिन-राय॥ प॥ ४३॥ मिथ्यात अब्रत प्रमाद कषाय। जोग आस्रव समवायंग पंचम ठाणें। येतो अब्रत आस्रव बीजो कह्यो जिन। कषाय आस्रव चौथो जाण॥ प॥ ४४॥ चौकडी तो चौथो आस्रव तिण ने। अब्रत कहै मूढ विना विचार॥ अब्रत तो छे दूजो आस्रव। समझोरे समझो थे मूढ गिमार॥ प॥ ४५॥ सोला ही कषाय छे कषाय आस्रव। वारा ने कषाय आस्रव बतावै॥ च्यार कषाय ने कहै अब्रत आस्रव। गालारा गोला घड २ चलावै॥ प॥ ४६॥ कषायरा तो त्याग किया नहीं होवै। एहना कर्म घटयां गुण प्रगटै उदारो॥ अब्रतरा त्याग किया हुवै ब्रती। तिणसूं कषायने अब्रत आस्रव न्यारो॥ प॥ ४७॥ इम सांभल उत्तम नर नारी। चौकडी ने अब्रत मत जाणों॥ पडिमां

धारी रै अव्रत आहारादिकरो । पेज बन्धण न्यातीलारो पिछाणों ॥ प ॥ ४८ ॥ पडिमां धारीने समण भूये कह्यो छै । ते पिण देश थी उपमा जाणों ॥ अन्तगढ दशा मे कह्यो द्वारका ने । प्रत्यक्ष देव लोक भूया पिछाणो ॥ प ॥ ४९ ॥ जिन नहिं पिण जिनवर सरिषा । थेवरा ने कह्या उववाई मांहीं ॥ अनन्त गुण फेर त्यांरा ज्ञानरै मांहीं । पिण देश थकी उपमा दीधी बताई ॥ प ॥ ५० ॥ चक्रिवरतरा अश्वरतन ने । चमारै लेखे कह्यो साधू सरीसो ॥ जम्बू द्वीप पन्नती मे श्रीजिन भाख्यो । ए पिण देश थी उपमा दीसो ॥ प ॥ ५१ ॥ तिम पडिमां धारी ने कह्यो साधु सरीखो । ते पिण देश थी उपमा जाणो ॥ पडिमां बिच तो संथारो अधिक छै । ते संथारा में पिण ग्रहस्थ पिछणों ॥ प ॥ ५२ ॥ उपासगदशा में कह्यो गौतमने । आनन्द श्रावक संथारा माह्यो ॥ हूं ग्रस्थावास बसतो ग्रहस्थ छूं । मोनैं इतनु अवधि ज्ञान ऊपनों आयो ॥ प ५३ ॥ संथारा में पिण ग्रहस्थ कहिजे । तो पडिमां में ग्रहस्थ न कहै किण लेख ॥ इण न्याय पडिमांधारीनें ग्रहस्थ कहिजे । तिणरो खाणु पीणों अव्रत मे देख ॥ प ॥५४॥ ग्रहस्थरी वैयावच करै करावै अनुमोदे तो साधूनें बीर कह्यो अणाचार ॥ दशवैकालिकरै तीजे अध्ययनें । तो ग्रहस्थ नें पिण

धर्म नही छे लिगार ॥ प ॥ ५५ ॥ इक्यावन बोल सेव्यां अणाचार साधू नें। तो ग्रहस्थ सेवै तिण मे पाप कर्म ॥ ज्यूं ग्रहस्थरी वेयावच अणाचार साधू नें। ग्रहस्थ नें किण विध होसी धर्म ॥ प ॥ ५६ ॥ ग्रहस्थरी वेयावच अणाचार मे कही जिन। तो पडिमां धारी पिण ग्रहस्थो जाणूं ॥ तिणनें असणादिक देवै तो व्यावच। तिण से धर्म किहां थी होसी रे अयाणूं ॥ प ॥ ५७ ॥ ग्रहस्थ ने दान दीधां अनुमोदां ॥ साधु ने प्रायश्चित आवै चौमासी ॥ निशीथ रै पंदरमें उद्देशे भाख्यो। तो ग्रहस्थ ने धर्म किण विध थासी ॥ प ॥ ५८ ॥ तो पडिमां धारी ने पिण ग्रहस्थ कहीजे। तिण दान ने साधु अनुमोदै तो दण्ड आवै ॥ तो देवण वाला ने धर्म किम होसी। बुद्धिवन्त सूत नू न्याय मिलावै ॥ प ॥ ५६ ॥ श्रावकरो खाणों पीणों सर्व अव्रत में। सुयगड़ा अग अठार में साखी ॥ बलि सूत्र उववाईरै प्रश्न वीस में। ते अव्रत सेव्यां कहै धर्म अनाखी ॥ प ॥ ६० ॥ अव्रत ने भाव शस्त्र कह्यो छे। सूत्र ठाणा अंग रे दश में ठाणें। ते अव्रत सेयां सेवायां। धर्म पुन्य अज्ञानी जाणें ॥ ६१ ॥ पडिमां धारी ने तो कह्यो बाल पण्डित। बलि व्रता व्रती तिण ने कहिजे ॥ धर्माधर्मी पिण कह्यो छे तिण

ने । बुद्धिवन्त न्याय विचारी लीजे ॥ प ॥ ६२ ॥ अधर्मीरै विषै रह्यो असंजती । तिण अधर्म ने कियो अंगीकार ॥ धर्मी नैं विषै रह्यो संजमी । ते धर्म आदरी नैं विचरै उदार ॥ प ॥ ६३ ॥ धर्माधर्मी में रह्यो संजतासंजती । तिण धर्म अधर्म कियो अंगीकार ॥ सूत्र भगवतीरै सतरमें शतकै । पहिले उद्देश कह्यो विस्तार ॥ प ॥ ६४ ॥ व्रत ते धर्म अधर्म अव्रत ते । अव्रत सेवायां धर्म न होय ॥ पडिमां धारी नें श्रमण भूए कह्यो छै । ते देश थकी ओपमां अवलोय ॥ प ॥ ६५ ॥ सघला ही भेला करै तो । एक साधूरै तुल्य न आवै ॥ उत्ताध्ययन पंचम अध्ययने । तो पडिमां धारी साधू किम थावै ॥ ६६ ॥ वलि पोसा में सावद्यरो आगार न श्रद्धै । ये पिण विकलारै पूरो अन्धारो ॥ सामायक में आत्मां शस्त्र कहिजे । तिम पोसा में पिण शस्त्र विचारो ॥ प ॥ ६७ ॥ वलि यतन करै गहणा वस्त्र कायारा । ते पिण सावद्य जोग प्रसिद्धा । सर्व सावद्य जोगरा त्याग साधां रै । इण सर्व सावद्यरा त्याग न कीधा ॥ प ॥ ६८ ॥ वलि पुत्र न्यातीला परिग्रह से । ममत्व भाव पेज बंधन पूरो ॥ बादर पणें त्यांग्यां ते पाप टलियो । पिण सूक्षम पणों तो न कियो दूरो ॥ प ॥ ६९ ॥ छः पोसा मास में करै

कोई श्रावक । एक वर्ष रा बहोत्तर थायो । तोमत्तरमूँ पोसी सम्वतसरीनूं । यां दिनां रो व्यांज लेवै किण न्यायो ॥ प ॥ ७० ॥ सैंकडां गुमास्ताकमावै तिणरै । इतरा दिनांरो नफो आवै घर मझारो ॥ तो त्यांरो पिण तेहिज मालिक छै । इण लेखै सूक्षमपणे रह्यो आगारो ॥ प ॥ ७१ ॥ इमहिज आगार पड़िमां धारी ते पिण । आगार में धर्म मूल म जाणों ॥ पड़िमां ते वभ्रत आगार ते अव्रत । यां दोयां ने रूडी रीत पिछाणों ॥ प ॥ ७२ ॥ इम सांभल उत्तम नर नारी । अव्रत सेयां धर्म मे थापो ॥ धर्मरी आज्ञा देवै तीर्थंकर । अव्रतरी आज्ञा न देवै जिन आपो ॥ प ॥ ७३ ॥ पड़िमां धारी री अव्रत ओलखावन । जोड़ कीधी पाली शहर मंझारो ॥ सम्वत् अठारह ने वर्ष चोराणुवै । भादवा विद एकम गुरुवार ॥ प ॥ ७४ ॥

॥ अथ तीन मनोरथ ॥

॥ दोहा ॥

प्रणमुं अरिहन्त सिद्ध वलि आचारज उवझाय ।
साधु सकल पद वन्दतां आनन्द मङ्गल थाय ॥१॥
श्रीजिनवर स्वमुख थकी तीजा अङ्ग मझार ।
तीजे ठाणें आखिया तीन मनोरथ सार ॥ २ ॥

श्रावक व्रत धारक जिके चिन्तवतां सुखकार ॥
कर्म महा अघ निरजरै पामैं भव नों पार ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

भाखै कृष्ण मुरार, धृकार संसार नेरे ॥ एदेशी ॥

प्रथम मनोरथ मांहि, श्रावक इम चिन्तवैरे । ए आरम्भ दुःख दाय, परिग्रह थी हुवैरे ॥ १ ॥ महा अनर्थ नुं मूल, परिग्रह जिन कह्योरे । किंचित ने वलि स्थूल, पंच भेदे ग्रह्योरे ॥ २ ॥ खेतु वथु दिक जाण, हिरण्य सुवर्ण सह्योरे । कुम्भिधातु धन धान, द्विपद चोपद मयोरे ॥ ३ ॥ यथा शक्ति प्रमाण, त्याग उपरान्त हो । पंचम व्रत गुण खान । करण जोगवन्त हो ॥ ४ ॥ जे राख्यो आगार, ते अव्रत द्वार है । देयां देवायां तार पाप संचार है ॥ ५ ॥ सचित अचित जे वस्तु, आहार ने पाणियां सावद्य कार्य समस्त, भोगायां भलो जाणियां ॥ ६ ॥ हिन्सा हुवै षटकाय, तणों ग्रहवास में । जिन मुनि आण न ताय, धर्म नहीं जास में ॥ ७ ॥ आरम्भ परिग्रह एह, कुगति दातार है । क्रोध मान माया लोभ, तणुं करण हार है ॥ ८ ॥ संजम समकित कल्प, तरु नों भंजनूं । महा मन्द बुद्धि अज्ञान, तणों मन रंजनूं ॥ ९ ॥ मांठी

लेश्या होय, आर्त रौद्र ध्यान में। न्याय न सूझै कोय। लिप्त धनवान ने ॥ १० ॥ सुमति शुचि सौभाग्य विनासण एह हो। जन्म मरण भय अथाग, हुवै परिग्रह थकी ॥ ११ ॥ कड़वा कर्म विपाक, तणों हेतु सधै ॥ सोचै तृष्णा बेल, विषय इन्द्री वधै ॥ १२ ॥ दारुण कर्कस दुःख वेदन असराल हो। कूड़ कपट परपंच करै बिकराल हो ॥ १३ ॥ इण सरीषो नहिं मोह पास, प्रति बन्ध है। स्नेह राग करि जास, मूर्छा अंध है ॥ १४ ॥ दान कुपात्र दुरगति दायक जिन कहै। परिग्रह थी देवाय ते थी शिव किम लहै ॥ १५ ॥ घणां कालनौं प्रीत, विनासै स्वात मैं कुल मर्यादनी रीत, छाड़ै बलि न्याति में ॥ १६ ॥ एहवो आरम्भ परिग्रह, जे दिन त्याग स्यूं। थासि ते दिन धन्य अन्तस वैराग्य स्यु ॥ १७ ॥ बाह्य अभ्यन्तर ग्रन्थ तणी मूरछा तजूं। प्रगट भल रवि तेह, नाम प्रभु नूं भजूं ॥ १८ ॥

॥ दोहा ॥

दूजो मनोरथ चिन्तवै, श्रावक जे व्रत धार।
तन धन जोबन कारमूं, विणशंता नहिं वार ॥१॥
मात पिता बंधव त्रिया, पुत्रादिक परिवार।
स्वारथ लग सहुको सगा, सही संसार असार ॥२॥

ग्रह वासे हिवडां वसूं, चारित मोह जी कर्म।
क्षय उपशमियां थी कदा, लेस्यूं चारित्र धर्म ॥३॥

॥ ढाल ॥

वैरागी मन वालियो तथा कृष्ण भावे रूडी भावनां एदेशी।

धन २ संजम धर मुनि। त्याग्यो ते ससार॥ पंच महाव्रत धारका। पाले पंच आचार॥ धन २ संजम धर मुनि॥ १॥ श्री जिन आणा बाहिरो। सावद्य कारज ताय॥ नहिं आदेश दे तेहनूं। मौन धारै मुनिराय॥ धन॥ २॥ दश विध यति धर्म धारियो। यति नाम कहिवाय॥ जीत्या विषय इन्द्रियां तणीं। द्वितीय अर्थ सुख दाय॥ धन २॥ ३॥ दोष बयांलीस टासके। ले भिक्षू शुद्ध आहार॥ कह्यो भिक्षू ए गुण थकी। भेदे कर्म अपार॥ धन॥ २॥ ४॥ साधे शिव मग साधनां। साधु महागुण खान॥ द्वादश भेदे तप करे। तपसी नाम बखान॥ धन २॥ ५॥ मतहणों २ जीवने। दे उपदेश महन्त॥ माहण महा गुण आगला। शान्तिभाव ते शंत॥ धन २॥ ६॥ कल्याण कारी ते भणीं। कल्याणिक मुनि नाम॥ विघ्नोपशम कारी पणें। मंगलीक अभिराम॥ धन २॥ ७॥ धर्मोपदेशक गुण थकी। पूजनीक तसु पाय॥ तीन लोकना अधपति। धर्म देव मुनिराय॥

धन २ ॥ ८ ॥ चित्त परसन दरशन तसु । चैत्य सदा सुख कार ॥ नव विध पाले ब्रह्म क्रया । बलिहारी ब्रह्मचार ॥ धन २ ॥९॥ जन्म सफल कियो महा ऋषी । षट काया प्रतिपाल ॥ भवसागर मे डूबतां । जिहाज समान दयाल ॥ २ धन ॥ १० ॥ स्नेह पास नहिं किहसूं । सम्वेगी वैराग ॥ ग्रंथी त्याग निग्रंथ है । महकत सुयश अथाग ॥ धन २ ॥ ११ ॥ शुद्ध क्रया में श्रम करै । श्रमण कहिजे तेह ॥ योग विमल साधै सदा । तिणसुं योगी कहेह ॥ धन २ ॥ १२ ॥ आर्जव २ भाव थी । मार्द्दवं २ भाव ॥ शौच शुची क्रयाभली । करता मुक्ति उपाय ॥ धन २ ॥ १३ ॥ धर्म बिणाज विणजे सदा । सार्थ वाह सुविचार ॥ कर्म काटक दल जीतवा । सैनापति व्रत धार ॥ धन २ ॥ १४ ॥ मन वच काया गोपवे । सुमति पंच प्रकार ॥ इन्द्रादिक स्वमुख करी । न लहै गुणनों पार ॥ धन २ ॥ १५ ॥ सवला इकवीस दोष जे । टाले ते भल रीत ॥ तीन तीस आशातनां करै नहिं सुविनीत ॥ धन २ ॥ १६ ॥ आचारज उवज्झायरी । व्यावच से धर प्यार ॥ तपसी लघु पुन ग्लानने । वस्त्रादिक दे आहार ॥ धन २ ॥ १७ ॥ भव भ्रम भमता जीवनें । तारण तरण समान ॥ गहन कंतार संसार थी । ल्यावे शिव मग

स्थान ।। धन २ ।। १८ ।। चन्द्र तणीं पर निरमला । तम मिथ्या मति नाश ।। अडिग अमर गिर सारिषा। रविवत् ज्ञान प्रकाश ।। धन २ ।। १९ ।। जिन भाषित दाषित सदा । साधु श्रावक नुं धर्म ।। अव्रत विष सम लिखवी । पाळै क्रया कर्म ।। धन २ ।। २० ।। आतम भावै विचरता । ध्यावै निज ध्येय ध्यान ।। अकरता पद परिणामें ।। धन २ ते गुणवान ।। धन २ ।। २१ ।। निन्दत बंदत सम पणौं । राग द्वेष नहिं होय ॥ जश अपजश जीवण मरण में हर्ष सोग नहिं कोय ॥ धन २ ॥२२॥ सफल जमारो धन घड़ी। भावे जाग्रत जेह ॥ अप्रतिबन्ध वायु परै। तजो कुटम्ब थी नेह ॥ धन २ ॥ २३ ॥ चारित्र मोह क्षयोप शम्यां । हूं एहवो व्रत धार ॥ थास्यूँ ते दिन धन घड़ी । आनन्द हर्ष अपार ।। धन २ ।। २४ ।।

।। दोहा ।।

तीजो मनोरथ चिन्तवै, मनमें श्रावक एम ।
संजम ग्रहि शुभ भावसें, लिया निभावूं नेम ।१।
ये संसार अगाध में, भमियों काल अनन्त ।
बहु षटरस भोजन किया, समता नहिं उपजंत ।२।
चरण सहित अणसण करूं पादोप गमन संसार ।
अवसर मरण तणीं वलि, होय जो शरणा च्यार ।३।

॥ ढाल ॥

रहो २ राजेमरा केशरिया तथा हूं तुज आगल मी काहूं कन्हैया एदेशी।

शुभाशुभ पुदगल फरसिया ॥ गुणवंता ॥ षटचण दिशनं आहार हो ॥ गु ॥ श्रावक ॥ दुगन्ध सुगन्ध फरस आठहो ॥ गु ॥ पंच वरण रस धारहो ॥ गुणवंता श्रावक ॥ भावे एहवी भावनां गुणवंता ॥१॥ मोटी माया मोहणी ॥ गु ॥ खोटी पुदगल पर्याय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ उदय थयां दुःख नीपजै ॥ गु ॥ वेदै चेतन रायहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ २ ॥ प्रकृति अठवीसें करी ॥ गु ॥ क्रोध मान माया लोभहो ॥ गु ॥ चिहूं २ भेदें संचरे ॥ गु ॥ पासें चेतन खोभहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावै ॥ ३ ॥ हास्य रत्तारत्त भय वलि ॥ गु ॥ सोग दुगंछा थाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ स्त्री पुरुष नपुंशक तिहु ॥ गु ॥ मोह चारित्त कहिवाय ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ ४ ॥ दरशन मोह उदय थकी ॥ गु ॥ मिथ्यात समकित जानहो ॥ गु ॥ श्रा ॥ मिश्र मोहनी ये तिहुं ॥ गु ॥ दावै निजगुण खान हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ ५ ॥ असाता वेदनोदय ॥ गु ॥ भूख तृषादि पिडंत हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ लाभ भोगान्तर चयोपशम्यां ॥ गु ॥ भोग शक्ति पावंत हा ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे

॥ ६ ॥ नाम उदय थी सहु मिले ॥ गु ॥ गमता अणग-मता भोग हो ॥गु॥ श्रा ॥ विविध प्रकारे भोगवे ॥ गु ॥ शरीरादि रोग्य आरोग्य हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥७ ॥ बार अनन्त सुख दुःख लह्या ॥ गु ॥भव भव भमियो जीव हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ स्वर्ग नरक फुन मनुष्य में ॥ गु ॥ तिर्यंच गतिमें अतीव हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ ८ ॥ अनन्त मेरु सम आहारिया ।। गु ।। अनंत पुद्गल पर्याय हो ।। गु ।। श्रा ।। इक इक लोकाकाश में ।।गु ।। वार अनंत कहिवाय हो ।। गु ।। श्र ।। भावे ॥ ६ ।। भोजन क्रिया इण आरमां ।। गु ।। बहु मूल्यनीं तंत हो ।। गु ।।श्रा।। इम जांणी अणशण करै ।। गु ।। छेहले अवसर संत हो ।। गु ।। श्रा ।। भावे ।। १० ।। अष्टादश जे पापनां ।। गु ।। थानक प्रते आलोय हो ।। गु ।। श्रा ।। निन्दै दुष्कृत जे थया ।। गु ।। सल्य रहित सहुकोय हो ।। गु ।। श्रा ।। भावे ।। २१ ।। लाख चौरासी योनि नें ।। गु ।। वारम्वार खमाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ राग द्वेष तज, सहु थकी ॥ गु ॥ हर्ष सोग नहीं कांय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १२ ॥ च्यार प्रकार आहार जे ॥ गु ॥ त्यागी ममता रहित हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ पंच आस्रव पचखी करी ॥ गु ॥ पादोपगमन सहित हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥१३॥ जङ्गम स्थावर सम्पति ॥ गु ॥ द्विपद

चौपद वोसराय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ अरिहन्त सिद्ध साधु ध्यान थी ॥ गु ॥ शिवगति नेड़ी थाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ ॥ भावे ॥ ॥ १४ ॥ यह लोक पर लोकनी ॥ गु ॥ जिवितव्य मर्ण सधीर हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ आशा नहीं काम भोगरी ॥ गु ॥ सम परिणाम सुधीर हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १५ ॥ अन्त समां में एहवो ॥ गु ॥ पण्डित मरण जे थाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ मनरा मनोरथ जदि फले ॥ गु ॥ आनन्द हर्ष सवाय हो ॥ गु ॥श्रा॥ भावे ॥ १६ ॥ धन्य दिवस धन्य ते घड़ी ॥ गु ॥ आराधक पद पाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ अल्प भवारे आंतरे ॥ गु ॥ सिद्धगति में ते जाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १७ ॥ श्री भिक्षु गुण आगला ॥ गु ॥ प्रगट बतायो राह हो ॥ गु ॥ जिन धर्म जिन आणां महीं ॥ गु॥ आज्ञा बाहर नांहि हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १८ ॥ भारीमाल गणी तस पटै ॥ गु ॥ तृतीय तखत ऋषराय हो ॥ गु ॥श्रा ॥ जय वर पट तूर्य सूर्य सा ॥ गु ॥ पंचम् मघवा कहवाय हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ १९ ॥ माणक माणक सारिषा ॥ वर्तमान गच्छ स्थम्भ हो ॥ गु॥ श्रा ॥ जामे डाल शशि भला ॥ गु ॥ भविजन निरख अचम्भ हो ॥ गु ॥ श्रा ॥ भावे ॥ २० ॥ उगणीसय पैंसट बलि ॥गु॥ मिगसर सित पख पेख हो ॥ गु ॥श्रा॥ श्रावक गुलाब

कहै भलैं ॥ गु ॥ आनन्द हर्ष विशेख हो ॥गु॥ श्रावक॥ भावे एहवी भावना गुणवंता ॥ २१ ॥

॥ कलश ॥ गीतक छंद ॥

इमतणा मनोरथ चिन्तवै जे भविक नित प्रते जाण हौं ॥ अघ राशि कर्म विनाश थावै पावै पद निर्वाण हौं ॥ गणी डालचन्द दिनन्द सम मम गुरू तास पसाय हो ॥ कहै श्रमणोपासक गुलाबचन्द आनन्द हर्ष अथाय हौं ॥ १ ॥

इति तीनमनोरथम् ॥

अथ दशविधि श्रावक आराधना।

॥ दोहा ॥

श्री अरिहन्तादिकसहु। पांचूं पद सुखकार ॥
मन बचनें काया करी। करूं तसु नमस्कार ॥१॥
अरिहन्त सिद्ध साधु वलि। केवली भाषित धर्म ॥
ये च्यारूं शरणां थकी। पामैं शिव सुख परम ॥ २ ॥
श्रावक नें वलि श्राविका। व्रत धारक हुवै जेह ॥
केवली भाषित धर्म में। राखै नहीं सन्देह ॥ ३ ॥
लिया व्रत पालै वलि। श्रीजिन मति सूं प्यार ॥
उपसर्ग थी चल चित्त नहीं। लापै नही गुरुकार ॥४॥

कर्म योग थी किण समैं । लागे दोष तिवार ॥
गुरु मुख प्रायश्चित लेकरी । दण्ड करै अङ्गीकार ॥५॥
मुनि आलोवै दश विधै । आराधन सुखकार ॥
तिणपर श्रावक पडिक्कमे । समकित व्रत अणाचार ।५।
आराधनां जयाचाय कृत । जोड़ पुरातन जान ॥
तिण अनुसारे मैं कहूं । सुणिजो चतुर सुजान ॥७॥

॥ ढाळ प्रथम ॥

॥ वेदक जग विरला ॥ एदेशी ॥

॥ श्रावक गुण रसिया ॥ ए आंकडी ॥

श्रीजिन धर्म मांहि जे रसिया ॥ त्यांरे देव गुरु दिल वसियारे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ हाड वलि जे हाड नी मीञ्जी ॥ धर्म थकी रहै भीजीरे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ १ ॥ कुगुरु कुदेवनी अंछै न सेवा। धीर वीर गुण गेहवारे ॥ श्रा ॥ धर्म मैं दृढ रहै नित-सेवा ॥ अडिग है सुरगिर जेहवारे ॥ श्रा ॥ २ ॥ व्रत पच्चखाण सूधा जे पालै । निज आतम उज्वालैरे ॥ श्रा ॥ अतिक्रम व्यतिक्रम नांहि संभालै । पतिचार अणाचार टालैरे ॥ श्रा ॥ ३ ॥ कर्म योग दोष लागे किंवारे । तो डंड करै अङ्गीकाररे ॥ श्रा ॥ विहुंटक आलोयणा लेवै । पक्खी दिन तो अवश सेवरे ॥ श्रा ॥

॥ ४ ॥ चौमासी नहीं चूके लिगार । शुद्ध परिणाम सुविचाररे ॥ श्रा ॥ पर्व छमच्छर आवे जिंवारे ॥ पोषध अष्ट पोहर धारेरे ॥ श्रा ॥ ५ ॥ ध्यान करो शुभ भावना भावे । लखचोरासी योनि खमावेरे ॥ श्रा ॥ प्रमाद छांडो निज ध्येय ध्यावे । आराधक पद पावेरे ॥ श्रा ॥ ॥ ६ ॥ प्रत संसारी फुन हलु करमी । जगवल्लभ प्रिय धर्मीरे ॥ श्रा ॥ व्रतालोयण किम करत उदार । आखुं ते अधिकाररे ॥ श्रा ॥ ७ ॥ समकित रतन जतन थी राखे । न हुवे दुःख शिव सुख चाखेरे ॥ श्रा ॥ जिम कर्दम थी पङ्कज न्यारो । तिम संसार मझारोरे ॥ श्रा ॥ ८ ॥ लुखे परिणाम वसे घरवासा । राखे छांडणरी आशारे ॥ श्रा ॥ इण भव परभव मे सुख पावे । ढाल प्रथम ये गावेरे ॥ श्रावक गुण रसिया ॥ ९ ॥

॥ दोहा ॥

प्रथम द्वार आलोयणा । द्वितीय व्रत आरोप ॥
तृतीय जीव खमायवा । शुद्ध मनथी तज कोप ॥ १ ॥
चौथे पापज परहरे । पंचमे शरणां च्यार ॥
छट्ठे दुकृत निन्दवा । सप्तम सुकृत सार ॥ २ ॥
भावे छट्ठौं भावना । अष्टम द्वार मझार ॥
नवमें अणशण चित धरे । दशम सुमरे नवकार ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

(चौपाई नींदेशी)

सुणिये हिव प्रथम द्वार । तिणमे आलवणां अधिकार ॥ ज्ञान दरशण चारित तपसार । पडिक्कमे व्रत अणाचार ॥ १ ॥ श्रीजिनवर वचन उदार । सांचां श्रद्धया न हुवै किणवार ॥ तसु राखी नही प्रतीत । रुचिया न हुवै सुवदीत ॥२॥ अक्षर दीर्घ लघु बोलंतां । आलस करि अर्थ खोलंतां ॥ पद हीण कह्या हुवे कोय । लेऊं मिच्छामि दुक्कडं सोय ॥३॥ काम विनय दिक आठ प्रकार । भणवै जें ज्ञान आचार ॥ विनय रहित भणयों हुवैज्ञान । तसु मिच्छामि दुक्कडं जान ॥४॥ पाठ अर्थ विरुद्ध जे कीनो । मिथ्या अर्थ सांचो कहदीनो ॥ कीधी ज्ञान आशातनां कोय । थावो मिच्छामि दोक्कडं मोय ॥ ५ ॥ भाजन विन ज्ञान भणायो । सांचा अर्थ झूठो दरशायो ॥ सूत्र विरुद्ध प्ररूपणां कीधी । लेऊं आलोवणा तसु सीधी ॥ ६ ॥ पाखण्डियांरा वचन सुहाया । सूत्रा में गपोड़ा बताया ॥ शङ्का पाडी हुवे दूजारै । लेऊं मिच्छामि दुक्कडं सार ॥ ७ ॥ व्याख्यान-आदिकरै म्हांय । सुणतांरै दीधी अन्तराय ॥ क्रोध वशथी विवध प्रकार । भाषा बोली बिना विचार ॥८॥

पांच ज्ञान निन्दविया सोय। वलि गोपविया हुवै काय ॥ निन्दा ज्ञानी तणीं करी जेह ॥ थावो मिच्छामि दोक्कडं तेह ॥ ९ ॥ इम दरशननां अतिचार। आलवणा करूं तसु सार ॥ आठ गुण जे सम्यक् प्रकार। धाख्या न हुवें विनय विचार ॥ १० ॥ कुगुरु कुदेवांरी ताण। प्रशंसा करी हुवे जाण ॥ वलि सासता परिचा में रक्त। करी हुवें त्यांरी भक्त ॥ ११ ॥ जीवाजीव अजीव नें जीव। धर्म अधर्माधर्म अतीव ॥ साहु असाहु साहु नें असाध। मार्ग कुमार्ग इम हिज लाध ॥ १२ ॥ मोक्ष वाला नें अमोक्ष गयो। हांसी स्वपरवमणी कह्यो। ए सर्व वालांरो मोय। थावो मिच्छामि दुक्कडं मोय ॥ १३ ॥ सूत्र साधु अनें छक्काय। फुन सिद्ध संसारी म्हांय ॥ शङ्का राखी हुवे किण वार। होज्यो मिच्छामि दोक्कडं सार ॥ १४ ॥ गहन बातां आगम में आई। सांभल नें लेखो लगाई। विपरीत समझसमझाई। लेऊं मिच्छामि दुक्कडं गाई ॥ १५ ॥ कह्या साधू साध्वी जान। एक्रम प्रनम चंद समान ॥ अनन्त गुण फेर संजम मांहि। त्यांमें शङ्का राखी हुवै काहि ॥ १६ ॥ किञ्चित दोष लगावता देखी। संजम श्रद्धया न हुवे धरि सेखी ॥ पर पूठ निन्दा करी कोय थावो मिच्छामि दुक्कडं मोय ॥ १७ ॥ करडी प्रकृती

किणीरी जांणी। चारित मे शङ्का आंणी॥ थयो गण अपाराठो विंवार। लेऊं मिच्छामि दुक्कडं धार॥ १८॥ गणिनाथ नां अवगुण गाया। वलि गणथी कलुष भाव आया॥ सुविनीतरा भाव फिरायो। तसु मिच्छामि दुक्कड' थायो॥ १९॥ देव गुरु धर्म उदार देश सर्व शंका दिल धार॥ तेहनुं मिच्छामि दुक्कड' सार। हिव शंका न राखु लिगार॥ २०॥ कखा कखा अनमति नी वंछा जानी वाह्यं क्रयावंत बुगल ध्यानी॥ तसु प्रशंसा सेवा कीध। थावो मिच्छामि दुक्कड' प्रसिद्ध॥ २१॥ विदगंछा संदेह फल मांही। पोते राखी-औरांनें रखानी॥ तेहनुं त्रिविध २ मोय। थावो मिच्छामि दुक्कड' सोय॥ २२॥ जिन आज्ञा में न जाण्यों। आज्ञा बाहर धर्म वखाण्यो॥ हिन्सा कीयां धर्म कह्यो कोय। थावो मिच्छामि दुक्कड' मोय॥ २३॥ पंच प्रमेष्टी नां गुन गाऊं। सांचो श्रद्धूं दूजा नें श्रद्धाऊं॥ म्हारे शिव सुखनी हद च्याह। तिहां जावण रो करूं उपाय॥ २४॥ मोह कर्म पतलो नित करस्यूं। भव सागर पार उतरस्यूं। दूजी ढाल मे प्रथम द्वार। वलि आगै बहु विस्तार॥ २५॥

॥ दोहा ॥

देश चारितनां पडिक्कमुं। गुणियासी अतिचार (तिणमे)

साठ द्वादश व्रतनां । पन्दरे कर्मा थान टार ॥ १ ॥
पंच अणुव्रत अति भला । गुण व्रत तथ अवधार ॥
चिहुं शिखा ये द्वादशूं । व्रत म्हारे सुखकार ॥ २ ॥
तेज तसु आलोयणां । आराधक पद हेत ॥
लख चौरासी लही कहूं । सूत्र तणें संकेत ॥ ३ ॥

॥ ढाल ॥

सल्य कोई मत राखज्यो ॥ एदेशी ॥

व्रतालोयण मैं करूं । शुद्ध परिणां मे होई रे ॥
भोला बालक नींपरे । म्हारो आतमां लेज धाई रे ॥
व्रता ॥ १ ॥ त्रश जीव गाढे बांधणें । बांध्या हुवे किण दीसो रे । गाढे घावे घालोया । अतिभार घाल्या करि रीसो रे ॥ थावो मिच्छामि दुक्कडं लेहनूं ॥ २ ॥ चामडी छेदी शस्त्र थो । भात पाणीनों विछोहो रे ॥ विन अपराधे आकूटी । हणवा बुद्धि करी हण्यां सोहो रे ॥ थावो ॥ ३ ॥ आल झूंठा किण जीव रै । दिया हुवे किण वारो रे । छानी वात प्रकाश नें । कियो हुवै किणरो विगारो रे ॥ थावो ॥ ४ ॥ मृषा उपदेश दिया वलि । लेख कूडा लिख्यो ताह्यो रे ॥ राज पंचा मुख आगलै झूठी साख भरायो रे ॥ थावो ॥ ५ ॥ थांपण मूषा ज्यो किया । इत्यादि मृषा वायो रे ॥ हान्सि कोतु-

ठल थी कटा। फुन लोभ तणें वस आयो रे॥ थावो ॥ ६ ॥ चोर तणी परे चोरियां। तालो तोड वटो तो॥ परकूचियादि कारणें। चोर सु कवि हुवे प्रीतो ॥ थावा॥ ७॥ वस्तु चोरी नीं लेई हुवे वलि साक्ष दियो किणवारो रे॥ अदल बदल कपटें करें॥ कियां राज विरुद्ध व्यापारां रे॥ थावो॥ ८॥ चोखी वस्तु दिखाय नें। निकसी आपी रे॥ लोभ तणें वस आयनें। खोटा नांपणा नांपी रे॥ थावो ॥ ९ ॥ देव मनुष्य तिर्यंच थी। देवाङ्गना सङ्ग होई रे॥ परस्त्री अनें तिर्यंचणी। मांठी नजरां जोई रे॥ ॥थावो॥ १०॥ काल थोडानी राखी थकी। कुशील सेयो रक्त होईरे॥ हस्तकर्मादिक जोगसूं। पाप लागो हुवे कोईरे॥थावो॥ ११॥ अपरिग्रही वेश्यां आदिसु। मिथुनादिक अभिलाखीरे॥ तीव्र परिणामें सेवियो। चतु कुशीलें भाखीरे॥थावो॥ १२॥ कीला अनेक प्रकार सूं। स्त्रियादिक सूं भावीरे। नांता जुडाया परतणां। परनें हर्षधरी परणावीरे॥ थावो॥ १३॥ खेतु वथु हिरण्य सुवर्णनें। धन धानादिक रहांयोरे॥ कुम्भीधातु द्वि चोपद घणां। मर्याद उपरान्त बधायोरे॥ थावो॥ १४॥ ढाल भलीये तीसरी। कहि धुर द्वार मझारोरे। आगे विस्तार छे वलि घणूं। सांभलतां सुखकारोरे॥

व्रतालोपण मैं करूं ॥ १५ ॥

॥ दोहा ॥

गुणव्रत छे तण म्हांयरै, यथा शक्ति प्रमाण ।
दोषलागो हुवैतेहसैं, आलवणां तसु जांण ॥ १ ॥
चिहुं शिखा चोटी समां, आदरिया गुरुपास ।
दूषण लाग्यो किण समैं, आल वणा करूतास ॥२॥
तम्बोलीनां पान जिम, बारम्बार संभाल ।
करतां आतम ऊजलो, प्रगट थाय गुणमाल ॥३॥

॥ ढाल ॥

भोलाभर्म मैं क्यों भम्यों । क्यों तुज भालज ऊठीरे । एदेशी । दिशि मर्याद थकी कदा । आगै जाय पाप कीनोरे ॥ ऊंचो नींचो तिरछो दिशामझे । कम बेसी गिण लीनारे ॥ लेऊ मिच्छामि दुक्कड तेहनूं ॥ १ ॥ संदेह सहित गतागति करी । आघो पाछो पगदीधोरे ॥ विनराखी भूमी तणों । आहार कीयो पाणीं पीधोरे ॥ २ ॥ सचित अचित द्रब भोगव्या । वलि गहणां वस्त्र सवायोरे ॥ येक अनेक वेलां कोइ । अधिको भोगमैं आयोरे ॥ ले ॥ ३ ॥ पदर कर्म्मादान सेविया वलि अनेरा पासोरे । मन वचन कायाकरी अनुमोद्या हुवे जासोरे ॥ ले ॥ ४ ॥ कथा करी कंद्रप्यनौं । भांड

कुचेष्टा कीधोरे । विन अर्थे पापारंभ किया । शस्त्र तीरा कस्या सीधोरे ॥ ५ ॥ सामायकमें किण सम । हान्सि कौतुहल अथायोरे । विनजोयां विन पूंजीयां । तनचंवलतां सवायो रे ॥ ले ॥ ६ ॥ आयां त्रिना पारी हुवे । भाषा सावद्य बोली रे । संसारिक कारज मझे मननी लगाई ओलोरे ॥ ले ॥ ७॥ सामायक मर्याद थी ओछी करी हुवे त्हायारे ।। देव गुरु धर्म तीननां । अविनयासें वितल्यायोरे ॥ ले ॥ ८ ॥ देशावगासी जे व्रतछे । ते नही सेयो सेवायोरे वस्तु आंमी सांमी वार ली । आपो पुद्गल शब्दे जणायोरे ॥ ले ॥ ६ ॥ पोषध करतां किणसमें । सेया सावद्य कामांरे ॥ विन जोया विन पूंजीयां । फिरिया आमानें सामांरे ॥ ले ॥१०॥ आचार पास चनें भूमिका । उपग्रण सेझा संथारोरे ॥ सुपडि लेहणा न कोधी हुवे । निन्दा विकथा थी प्यारो रे ॥ ले ॥ ११ ॥ शुद्ध साधु निग्र थनें । अप्रिय बचन जे भाख्योरे ॥ हेला निन्दा करि तेहनी । आल अछतो दाख्योरे ॥ ले ॥ १२ ॥ चौदह प्रकार नूं दानजो । असूझता दिक दीधोरे ॥ स्व पर बस किण अवसरे । साधुरे काजकीधोरे ॥ ले ॥ १२ ॥ मेल प्रासु वस्तु सचितपे । वलि सचित थी ढाक्योरे ॥ अणगसतो आहार साधुनें । मांडाणी करि नांख्योरे ॥ ले ॥ १४ ॥

भांगी बैठ मुनि राजनी । भावना नहीं भाईरे । दान आलश थी नहिं दियो । शुद्ध मिलयां जोगवाईरे ॥ ल ॥ १५ ॥ ये द्वादश व्रतां तणों । आलोवणा करी सीधी रे ॥ जिन सिद्ध साधू साखथी । आतम निरमल कीधी रे ॥ ल ॥ १६ ॥ तप आचार द्वादश विषे । अभिग्रह त्याग अनेकोरे ।। तसु अनाचार सेव्यो हुवे । बलवीर्य गोप्यो विशेकोरे ॥ ल ॥ १७ ॥ चौथी ढाल कहि भली कह्यो पहलो ये द्वारोरे ॥ कहतां सुणतां सुखल है । आनन्द हर्ष अपारोरे । प्रथम द्वार इम जाणज्यो ॥१८ ॥ इति प्रथम द्वार ॥

॥ कलस ॥

इम प्रथम द्वार सुधार आतम व्रत आलवणा जे कही । इणरीत जे श्रावक सुद्धातम, क्रियां आराधक सही ॥ लागयो हुवै कोई दोष तेहनुं, गुरु मुख प्रायश्चित लही । तप अग्नि सूं कर्म काष्ट जोली, पालिये व्रत उमही ॥ १ ॥

॥ अथ दुसरो सम्यक व्रतरोपणाद्वार ॥

॥ दोहा ॥

अव्रतथी ग्रहस्थाश्रमैं, अनेक पाप उत्पन्न ।
आरंभ परिग्रह सर्वथा, तजस्यूं ते दिन धन्न ॥१॥

पूर्वे सुगुरु समीप मैं, समकित व्रत लिया तेह।
ते हिवडां फून उचरूं, सिद्ध साधु साखिह ॥२॥

॥ ढाल अरिहन्त मोटकाये ॥

समकित शुद्ध मन आदरूं ए। अरिहन्त छै मुझ देवकै ॥ गांवूं गुन जेहनां ए। सांचे मन करूं सेवकै समकित आदरूं ए ॥ १ ॥ ते कर्मरूप अरिजण हण्यां ए। रोक्या छे पापनां द्वारकै ॥ रागद्वेष चय किया ए। निजगुन प्रगट उदारकै ॥ स ॥ २ ॥ लोकालोकनी वस्तुनां ए। जाण रह्या सब भाव कै। जिन नाम कर्मथी ए ॥ अतिशय अधिक अथायकै। गावूं गुन जेहना ए ॥ ३ ॥ नरसुरइन्द्रादिक बहू ए। नरपति सारे सेवकै ॥ कहूं गुन किहां लगी ए। मोटा प्रभू देवापति देवकै ॥ गा ॥ ४ ॥ चोतीश अतिशय ओपता ए। पैंतीस वाणी वदीतकै॥ द्वादश गुन भला ए। अष्टादश दोष रहितकै ॥ गा ॥ ५ ॥ शुद्ध साधु गुरु म्हांयरै ए। पंच समिति हुसियारकै ॥ महाव्रत पंच पालता ए। तीन गुप्ति धरप्यारकै ॥ यहवा गुरु म्यांयरै ए ॥ ६ ॥ च्यार कषाय निवारनैं ए। पाले छे तेरा बोलकै ॥ परिसह सहनमे ए । सुर गीर जेम अडोलकै ॥यहवा॥ ॥ ७ ॥ सतरे विध संजम धरा ए। असंजम सतरं टारकै ॥ बावन अणाचार तजे

ए दोष । बयांलौ परिहारकै ॥ यहवा गुरु स्यांरै ॥ ८ ॥ धर्म जिनेश्वर भाखियो ए । अहिन्सा सुखकारकै ॥ वलि जिन आंणमें ए । न होवै पाप लिगारकै ॥ धर्म शुद्ध आदरू ए ॥ ९ ॥ वलि दुरगति पड़ितां जीवनें ए । धारी राखे ते धर्मकै ॥ साधु श्रावकनु भलो ए । पाल्यां शिव सुख परमकै ॥ धर्म ॥ १० ॥ व्रतमे धर्म जाणु खरो ए । अव्रत अनर्थ मूलकै ॥ दया अनुकम्पा भली ए । धर्म थी छै अनुकूल कै ॥ ११ ॥ करुणा मोह स्नेहनीं ए । कियां पाप सुजाणकै ॥ अव्रत सेवावियां ए । अधर्म कह्यो जगभांणकै ॥ धर्म ॥ १२ ॥ कुगुरु कुदेव कुधर्मनें ए । बोसराऊ दूणवारकै ॥ यथाशक्ति आदरू ए । व्रत पचखाण उदारकै ॥ धर्म ॥ १३ ॥ पहिलो व्रत त्रस जीवनें ए । आकूटी नें जांणकै ॥ हणवा बुद्धि करी ए । मारण मरावण पचखाणकै ॥ व्रत इम आदरू ए ॥ १४ ॥ राज डंडे लोक भांवे ए । इसो मोटो झूंट परिहारकै ॥ दूजो व्रत जांणिये ए । कारण जोग सुविचारकै ॥ व्रत ॥ १५ ॥ तालो तोडि परकुञ्जीसुं ए । परधन चोरण नेमकै ॥ कारण जोगें करी ए । तीजोव्रत करै येमकै ॥ व्रत ॥ १६ ॥ देव देवी तिर्यंच थी ए । परस्त्री वेस्यां आदिकै ॥ मनुष्य मनुष्यणी ए । चौथो मिथुन मर्यादकै ॥ १७ ॥ पंचमे

परिग्रहानूं करूं ए।. यथा शक्ति प्रमाणकै। नव विध जे कह्यो ए॥ धन धानादिक जाणकै॥ व्रत ॥ १८॥ ऊंची नीची तिरछी दिशा ए। जावथ राखो जेहकै॥ उपरान्त जायनें ए। पञ्च आस्रव पचखिहकै ॥ व्रत ॥ १६ ॥ उपभोगनें परिभोगमे ए। आवै छै छव्वीस बोलकै॥ त्याग किया तिकै ए। सातलूं व्रत अमोलकै॥ व्रत ॥ २०॥ आठमे अनर्थ डंडनां ए। त्याग करै जावज्जीवकै॥ च्यार प्रकारनां ए। कह्या पाप अतीवकै॥ व्रत ॥ २१ ॥ सामाइक नवमें करै ए। दशमे संवर आनकै॥ पोसो व्रत ग्यारलूं ए! बारमूं साधानें दे दानकै॥ व्रत ॥ २२॥ ढाल भली ए पांचमी ए। आख्यो छै दूजो द्वारकै॥ श्रावक शुभ भावसूं ए। आराधै धर प्यारकै॥ व्रत ॥ २३ ॥

॥ कलश ॥

ए कह्यो दूजो द्वार सार उदार आराधन तणूं, व्रतधार पार संसार करिवा, मुक्ति वरवा मनघणूं। पापटाल पखाल आतम निरमल कर भल भावसूं। भ्रम जाल आल पंपालतज भज जिन कृपाल उमावसूं ॥१॥ ॥ इति ॥

॥ अथ तीजो खमावन द्वार ॥

॥ दोहा ॥

व्रतधारक भवि शुद्धमन । खमत खामनां सार ॥ निरमल आतम किम करै। भाखूं ते अधिकार ॥१ ॥ सरल पणैं वच कायसूं । मन थी कपट निवार । नमन भाव दिल आणिनैं ॥ खमाविये तजखार ॥ २ ॥

॥ ढाल छट्ठी ॥

संभव साहिब समरिये ॥ एदेशी ॥

सात लाख योनि महीधरा ॥ सात लाख अप्प पाणीनी जोणिके । सात लाख तेउ अग्निनी ॥ वायु पिण इतनौं कही गोणिके । खमत खामनां तेह थी॥१॥ एक जीव इक तनु महीं । तेह प्रत्येक वनस्पति कायके ॥ दश लख योनि जिन कही । चौदह लख साधारण ताय-कै ॥ खमत ॥२॥ जीव अनन्ता एकसा । एक शरीर में रह्या तिण न्यायकै ॥ लीलण फूलण आदिमे । जमी-कन्द अंकूरा मांयकै ॥ खमत ॥ ३ ॥ सूक्षम बादर विहुं परै । क्रोध भाव आण्या हुवै कोयकै ॥ त्रिविध २ म्हांयरै । मिच्छामि दुक्कडं छै अवलोयकै ॥ खमत ॥ ॥ ४ ॥ बादर पांचूं कांयनें । हणी हणाई निजपर

काजके ॥ अनुमोदी हणतां प्रते। ते तिहुं जोग आलोवूं आजके। खमत ॥ ५ ॥ लट गिनोला बेंद्री। कीड़ादिक तेन्द्री नां जीवके ॥ खटमल प्रमुख विणासिया। कलुष भाव करि पाडी रीवके ॥ खमत ॥ ६ ॥ मांखी मांकर चौरिन्द्री। बिच्छु प्रमुख हण्या हुवै सोयके ॥ ये तिहुं विकलेन्द्री तणौं। योनि लख जाणों दोय दोयके ॥ खमत ॥ ७ ॥ रत्नप्रभाः जाव तमतमा। सात नरक मे नेरीया जेहके ॥ च्यार लाख योनि तेहनी। तास खमावूं शरल पणेहके ॥ खमत ॥ ८ ॥ च्यार प्रकारे देवता। भुवन पती व्यन्तर सुविचारके ॥ योतषी अनं विमानका। चिहुं लख योनि घणीं अधिकारके ॥ खमत ॥ ९ ॥ द्वेष भाव किणा अवसरै। आण्या हुवं वलि कलुष परिणामके। तास खमावूं भली परै ॥ खमज्यो तुम्हे देवा अभिरामके ॥ खमत ॥ १० ॥ तुर्य लाख तिर्यंचनो। जलचर मे मच्छादिक जाणके ॥ थलचर थलपै चालतो। हाथी अस्वादिक बहु प्राणके ॥ खमत ॥ ११ ॥ उरपर उरु सें गति करै। सर्पादिक वलि विवध प्रकारके ॥ भुजपर उन्दर आदि है। तासु खमावूं तज चित खारके। खमत ॥ १२ ॥ गमन आकाश करै तसु। खेचर पंखी कहिजे जासके। हांस कौतुहल दिल करी। हण्या हणाया हुवे वलि

तासकै ॥ खमत ॥ १३ ॥ पांच भेद तिर्यंच ये ॥ मन बिमना इन्द्रिय धर पांचकै ॥ सर्व प्रते तीन जोग सूं। खमत खामनां करूं तज खांचकै ॥ खमत ॥ १४ ॥ चौदह लख योनि मनुषनीं। सूत्र विषै भाषी जिन-रायकै ॥ तसु मल सूत्रादिक मही। छसूर्छम मनु उपजै आयकै ॥ खमत ॥ १५ ॥ ये चोरासी लख जाणिये। जीवा जोणि जे उपजण ठामकै ॥ बारम्बार ते सब प्रते। खमत खामना छै अभिरामकै ॥ खमत ॥ १६ ॥ देव अरिहन्त जे केवली। अनन्त चौबीसी हुई भर्त जेहकै ॥ इम हिज ऐरवय पंचमे। वर्तमान जिन पंच विदेहकै ॥ खमत ॥ १७ ॥ विनय करी कर जोड़नें मन शुद्ध थी खमाज्यो अपराधकै ॥ भव भव शरणों तुम तणों। तिणसुं थावै परम समाधिकै ॥ खमत ॥ १८ ॥ दूजै पद सिद्ध सुख करू। पूर्व प्रयोगे गति परिणामकै ॥ सर्वारथ सिद्ध थी अछै। द्वादश योजन ईसी प्रभाः नामकै ॥ खमत ॥ १९ ॥ ते थी ऊर्द्ध लोकान्तकै। गाऊं इकरै छट्टे भागकै ॥ अनन्त गुणो तुम्हें जयो वस्या। हिव पायो मैं तुम तणों मागकै ॥ खमत ॥ २० ॥ जे कोई जाण अजाणतां। आशातनां हुई तासु खमायकै ॥ आंवण तिहां मन लग रह्यो। तुम सरिखो तुम जपियां थायकै ॥ खमत

॥ २१ ॥ आचारज तीजे पदे। सम्यक्त चर्ण तणां दातारके ॥ शुद्ध प्ररूपण जेहनी। महा उपगारी महा सुखकारके ॥ खमत ॥ २२ ॥ उवझाया गण वत्सलू। भणें भणावें निरमल ज्ञानके ॥ गणी आणां न उलंघता। पालै पंच महाव्रत मानके ॥ खमत ॥२३॥ दाता समकित चर्णरा। देश व्रत पालूं तुम जोगके ॥ जे कोई जाण अजाणतां। आशातना हुई विन उपयोगके ॥ खमत ॥ २४ ॥ शुद्ध साधु अढी दीपमे। पंचयाम नव कल्प विहारके ॥ निरलोभी निर लालची। जाचै दोष वयांली टारके ॥ खमत ॥ २५ ॥ भिक्षू गणमें महा मुनी। साध्वियां सहु गुण भंडारके ॥ अप्रिय वच तसु द्वेष थकी। कियो अविनय खमाऊं सारके ॥ खमत ॥ २६ ॥ गुण विहुणा गण बाहिरा। टालोकर वलि भ्रष्टाचारके ॥ तासु खमावूं भली परे। किण अवसरे कियो कलुष विचारके ॥ खमत ॥ २७ ॥ मात पिता सुतनें धुया। वलितसु अंगज थी किण कालके ॥ बान्धव न्याती गोती सें। मित्र अमित्र सहु समभालके ॥ खमत ॥ २८ ॥ नोकर चाकर दास थी दासीनें वलि तसु अङ्ग जातके ॥ जो कोई जाण अजाणतां। स्व पर वश वच कटु आख्यातके ॥ खमत ॥ २९ ॥ क्रोध मान माया करी। लाभथकी

दिया अकला आलके ॥ सहु संसारी जीवसे। खमत्त खामना अधिक रसालकै ।। खमत ।। ३० ।। निज स्त्री पुत्र पुत्रीनें। हित शिक्षा देतां किण वारके ।। करडा वचन कह्या हुवे। कारज घरनां करावण सारके ।। खमत ।। ३१ ।। नाम लेईने जुवा जुवा। सर्व भणी इम खमत खमायकै ।। मन बच कायाइं करी। दिलमें मच्छर भाव मिटायकै ।। खमत ।।३२।। धर्म जिनेश्वर भाषियो। पायो इण भवमे सुविसालकै ।। विघ्न मिटै संकट कटै। तास प्रशादे मंगल मालकै ॥ खमत खामना इम करै ॥ ३३ ।। तीजे द्वार आराधना। खमाविये कही छट्टी ढालकै ।। आराधना पद पाविये। जिन बच म्हांसां नयण निहालकै। खमत खामना इम करै ॥ ३४ ।। इति।

॥ कलश ॥

इम खमत खामन अतहि पावन, बिमल भावन नित धरै। बहु अघ खपावे सुणें सुणावे, आत्म हित चित सुख करै ॥ श्री जिनेश्वर महाराज भव दधि, पाज काज सेयां सरै। कहे श्रावक गुलाब सु भाव गुण युत अतहो आनन्द निज घरै ॥ १ ॥

॥ अथ चतुर्थ द्वारम् ॥

॥ दोहा ॥

चौथे द्वारे छांडवा, अष्टादश जे पाप।
पाप तज्यां शिव सुखलहै, तिणसूं थिर चित थाप ॥ १ ॥

॥ ढाल ॥

इण अवसर धनजी आवै तथा सेव सुनी नौ कीजै। सेवाथी वंछत सीझैजी ॥ एदेशी ॥

मतकर तूं श्रावक पापं। जिन धर्ममे थिर चित थापंजी ॥ म ॥ १ ॥ पहलो अघ प्राणातिपातं। दूजो अघ मृषा वातंजी ॥ म ॥ २ ॥ तीजो अघ अदत्ता दानं। चौथो अघ मिथुन सुजानंजी ॥ म ॥ ३ ॥ पञ्चम अघ जे धन धानं। छट्टो अघ क्रोध वखानंजी ॥ म ॥ ४ ॥ सातमूं अघ छै अभिमानं अष्टम माया कपट तोफानंजी ॥ म ॥ ५ ॥ नवमूं लोभ निवारो। दशम राग परिहारोजी ॥ म ॥ ६ ॥ इग्यारमूं द्वेष न धरिवो। बारमूं कलह न करिवोजी ॥ म ॥ ७ ॥ अभ्याख्यान न दीजे। पर परिवाद न कीजेजी ॥ म ॥ ८ ॥ संजमथी अरति ल्यावै। असंजम रति मन भावैजी ॥ म ॥ ९ ॥ ये पाप सोलमूं छांडो। रति

अरति दोनूं छांडोजी ॥ म ॥ १० ॥ कपट सहित झूंठ बोलै । सतरमुं माया मृषा ओलैजी ॥ म ॥ ११ ॥ अठारमूं अघ अति भारो । मिथ्या दर्शन सल्य विचारीजी ॥ म ॥ १२ ॥ ये पाप अठारा जाणों । त्यांनें परहरै उत्तम प्राणीजी ॥ म ॥ १३ ॥ छांडणारी मनसा राखै । ते शिव सुख जलदी चाखैजी ॥ म ॥ १४ ॥ चौथे द्वार इम भावै । अंत समे पाप वोसरावैजी ॥ ॥ म ॥ १५ ॥

॥ कलश ॥

चौथे द्वार अराधनां कह्यो पापनें वोसरायवो ॥ कियां पाप अति दुःख परभवे इम जीवनें समझायवो धन संत तंत महंत नीका । पापनीं रजटोलता निज आतम सम पर प्राणि जांणो । पंच महाव्रत पोलता ॥ १ ॥ इति ॥

॥ अथ पञ्चमूं शरण द्वार ॥

॥ दोहा ॥

पंचम द्वारे धारवा, मनमे शरणां च्यार ।
अरिहन्त शिद्ध साहु वलि, जिन भाषित धर्म सार ॥१॥
शरणां थी सुख संपजै, दुःख दारिद्र पुलाय ।
विघ्न मिटै संकट कटै, मन वाञ्छित मिलजाय ॥२॥

॥ ढाल ॥

प्रभु वासु पूज्य भजले प्राणीं ॥ एदेशी ॥

प्रथम शरण अरिहन्त देवा। त्यांरी सुरनर सहु सारे सेवा॥ चरण कमलनी वलिहारी। मुझ शरण अरिहन्त तणूं भारी॥ १॥ जे कर्म रूप वैरी मास्या। लहि केवल भविजन नें तास्या। ते च्यार तीरथनां करतारी॥ मु॥ २॥ फिटक सिंहासन पै वैसी। साधु श्रावक धर्मनां उपदेशी। अहिन्सा अति सुखकार॥ मु॥ ३॥ तरु आशोक भलो स्होवे। अतिशय छत्र चमर होवे। भामंडलनी छिव भारी॥ मु॥ ४॥ सुर दुन्दभी नूं झणकारं। पुष्प वृष्टी सुगन्धित अनुकारं। सुर धुनी भविजननैं प्यारी॥ मु॥ ५॥ अनंत ज्ञान दरशन धारं। सुख वल अनन्त नही पारं। द्वादश गुण ये हितकारी॥ मु॥ ६॥ दोष अष्टादश दूर किया। राग द्वष अरि प्रति जीत लिया। बीत राग प्रभु गुणधारी॥ मु॥ ७॥ आठ महा प्रतिहारज छाजे। वाणी गुण पणतीस करी गाजे। चौतीस अतिशय सुविचारी॥ मु॥ ८॥ त्रिगढा विच प्रभुजी सोहवे। चिहुं मुख दिशमे मन स्होवे। समोवसरण रचना भारी॥ मु॥ ९॥ जे अष्ट कर्म नूं नाश करी। एक समय मांहि शिव रमण वरी। यया सिद्ध निरं-

जन अविकारी ॥ मु ॥ १० ॥ अजोगी अभोगी अवि-
नाशी । अनन्त आत्मिक सुख सुविलासी ॥ जिके
आवागमन दियो टारी । मुझ शरणों सिद्ध तणों
भारी ॥ ११ ॥ निवड कठिन जे कर्म दहो । बलि
ज्ञान क्रिया करि मुक्ति लहो । अठ गुण अतिशय येक-
तीस त्यांरो ॥ मु ॥ १२ ॥ तीन काल तणां सुर सुख
लहिये । तसु अनन्त बारंगणा फुन दईये । तेहथी
अनन्त गुणों सुख हैं सारो ॥ मु ॥ १३ ॥ तीजो शरणों
मन भावो । साधू साध्वियानों मुझ थावो ॥ पंच
सुमति महा व्रतधारो । मुझ शरणों साधां तणों भारी
॥ १४ ॥ बयांलीस दोष तज आहार लेवै । हित
शिक्षा भविजन नें देवै । पालै संजम सतरै प्रकारी
॥ मु ॥ १५ ॥ मांडलानां पांच दोष टालै । तिके
राव रंक सहु सम भालै । विषय इन्द्रियां नां परि-
हारी ॥ मु १६ ॥ दुष्ट अश्व मन जीत लियो । बलि
कांदर्प मनथी दूर कियो । आप तरै परनें तारी ॥ मु ॥
॥ १७ ॥ निन्दा प्रशंसा में सम भावे । राग द्वेष
किणही पर नहिं ल्यावे ॥ भोग तजी थया ब्रह्मचारी
॥ मु ॥ १८ ॥ दुःख नरक निगोद थकी डरता । तजी
स्नेह नव कल्प विहार करता । ते सुविनीत गुरू
आज्ञा कारी ॥ मु ॥ १९ ॥ केवल ज्ञानी जे धर्म

कह्या। तेही संवर निरजरा मांहि रह्यो ॥ कर्म काटै नें रुद्रौ सारो। मुक्ख शरणों धर्म तणो भारी ॥ २० ॥ जिन आज्ञा मांहि धर्म अखै। जिण दुर्गति पड़तां नें धारि रख। व्रत धर्म अव्रत दुःख कारी ॥ मु ॥२१॥ दान सुपात्र सुख प्रगटै। पाल्यां संजम तपथी पाप कटै। भव भ्रमण मिटै वरै शिव नारी ॥ मु ॥ २२ ॥ इम च्यार शरणां जे नित ध्यावै। रोग सोग जिणांरै नहिं थावै। ये ढाल आठमी जयकारी ॥ मु ॥ ॥ २३ ॥

॥ कलश ॥

जयकार सार उदार शरणां, विघ्न हरण ये कह्या। सुख कार पर उपगारि श्रावक तणों मनमे वस रह्या ॥ अघटार खार निवार भवि तूं धार चिहुं विध शरणकों। संसार गार अपार पारावार भवदधि तरणकों ॥ १ ॥ इति ॥

॥ अथ छट्ठो दुकृत निन्दा द्वार ॥

॥ दोहा ॥

दुकृतनौं निन्दा करै, छट्टा द्वार विशेह।
कुकर्म किया कराविया, ते सहु याद करेह ॥ १ ॥

बलि धिक्कार इण जीवनें, राग द्वेष वश आण।
लोभ वशे अनर्थ किया, निन्दा तेहनों जाण ॥ २ ॥

॥ ढाल नंवमी ॥

सीता आवेरे धर राग ॥ एदेशी ॥

भवभव भमियो निज गुण गमियो, रमियो मिथ्या माहि। सुगुरु न नमियो मन नहिं दमियो। मन वच निन्दूं ताहि। दुक्कत निन्दूं धरि अह्लाद ॥ १ ॥ खोटा देव खोटा गुरु सेव्या। बलि धार्यो कुधर्म। बाह्य अडम्बर देखो तेहनुं नमियो शर्माशर्म ॥ दुःक्कत ॥२॥ अन्य मति क्कत शास्त्र बांचिया श्रद्धा विरुद्ध विचार। अशुद्ध प्ररूपन करी कुसंगे। ते निन्दूं धर प्यार ॥ दुक्कत ॥ ३ ॥ हिन्सा मांहो धर्म जाणियो नगिण्यों दोष लिगार ॥ भागल भष्टरी संगत सेती आरंभ किया अपार ॥ दुक्कत ॥ ४ ॥ शुद्ध साधु नां गण थी बाहर। निकलिया जे तास ॥ धर्म जोण अशणांदिक दीधो॥ वलि नमस्कार कियो जास ॥ दुक्कत ॥ ५ ॥ दान कुपात्रां नैं धर्म जाणी। दियो हुवे जे कोय ॥ इच्छा असंजम जीतवनों। थावो मिच्छामि दुक्कडंमोय ॥ दुक्कत ॥ ६ ॥ स्नेहराग अनुकंपाकरि कै। जिन धर्म जाण्यो होय ॥ अव्रत सेतां अनें सेवातां। श्रध्यो धर्म सु सोय ॥ दुक्कत ॥ ७ ॥ बीतरागनूं निरस्नेही मारग। ढांक्यो

हुवे क्रियावार ॥ कुमारगनै प्रगटज कीधो। ते निन्दूं धरप्यार ॥ दुःकृत ॥ ८ ॥ इ'गालिक कर्म्मादिक पंदरा । सेव्या कर्म्मादान ॥ निज पर अर्थं कुकारज कीधा । लीधा अदत्ता दान ॥ दुकृत ॥ ६ ॥ आलस करी उघाडा राख्या । घृत आदि रसनां ठाम ॥ घाणी प्रमुख मे जंतु पिलाव्या । क्रिया निन्दनीक जे काम ॥ दुकृत ॥ १० ॥ खान खुदाई भूमि फडाई । ढोल्या अणगल नीर ॥ यंत्र घटी ऊंषल मूशल दिक । करतां नहिं जाणीं पर पीर ॥ दुकृत ॥ ११ ॥ महा आरंभ करि जीव विराध्या । बोल्या मृषावाद ॥ पर द्रोह दीधो चोरी कीधो । सेव्या मिथुन उनमाद ॥ दुकृत ॥ १२ ॥ परिग्रहा मांहि लिप्त रह्यो चित । कीधो क्रोध विशेष ॥ मान मायानें लोभथकी मे ! किया रागनें द्वेष ॥ दुकृत ॥ १३ ॥ दुष्ट परिणामां त्रसजीवांनें । पाणी मांहि डबोय ॥ हांसि कोतुहल करि मन हरख्यो । राख्या थापण मोसा मोय ॥ दुकृत ॥ १४ ॥ कसाई प्रमुखरा भव मे मार्या । त्रस प्राणी दिन रात ॥ भाडे चलाव्या सगट ऊंटादिक । लालच थी करी घात ॥ दुकृत ॥ १५ ॥ न्यायालय मे हाकम होकि । किया अधिक अन्याय ॥ पक्षपात धर करि पंचायत । कुडो साख भराय ॥ दुकृत ॥ १६ ॥ हाव पकाव्या कुंभारनें भव । तेली भव मे तेल ॥

मालो भव में वृक्ष विणास्या । रांगण भव रेलापेल ॥ दुकृत ॥ १७ ॥ हिन्सक जीव सिंह मृगादिक । खेली तास सिकार ॥ मद्य मांसनां भक्षण कीधा । पिया गांजा सुलफा धार ॥ दुकृत ॥ १८ ॥ विनजोयां विनपूंज्यां ईंधण । बाल्या चूल्हा मांहि ॥ लट्ट गिंनोला घुंण इल्यादिक । विराधिया हुवे ताहि ॥ दुकृत ॥ १६ ॥ परद्रोह द्रोधी कलह लगाव्या । घातकरी विश्वास ॥ गर्भ गलाव्या मंत्रपढाव्या । वसीकरणादिक जास ॥ दुकृत ॥ २० ॥ गुणवंतानां गुण नहीं गमियां । दिया अछता आल । संत सत्यांरी निन्दा कीधी । मच्छर भावैं भाल ॥ दुकृत ॥ २१ ॥ पंच आस्रव सेव्या सेवाया । तिमहीज पाप अठार ॥ इणभव परभव दुकृत कीधा । थावो त्रिविध २ धिक्कार ॥ दुकृत ॥ २२ ॥ इणपरि दुकृत कारज तेहनी । निन्दा करै नार ॥ हलु कर्म्मी निन्दै दुष्टातम । पावै सुख अपार । दुकृत निन्दै धरि अहलाद ॥ २३ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

अपार शिव सुख सास्वता । गुरु आसता थी पामिये ॥ कुदेव कुगुरु कुधर्म ये तिहुं । मन हुंती सहुवामीये । जे क्रिया सावद्य कार्य्य तेहनी निन्दनां करिये

वलो। शुभकार्य्य भलभावें आचरिये। जेम थावे रंग-रलो॥ १॥

॥ इति षष्टम द्वार॥

॥ अथ सप्तम् सुकृत अनुमोदनाद्वार॥

॥ दोहा॥

तप उपवासादिक क्रिया। व्रत संवर सुखकार।
सुकृतनी अनुमोदनां । सप्तम द्वार मझार॥१॥
जिनमार्ग शुद्ध निरमलो। समकित चर्ण उदार।
ज्ञान दरशन चारित्र तप। ते अनुमादू सार॥२॥

॥ ढाल दशमीं॥

नींदडलो हो नाह निवारिये॥ एदेशी॥

श्री तीरथ पति इम उपदिश्यो। मत हणज्यो हो छकाय ना जीवकै॥ अनेरा पास म हणावज्यो। अनु-मोद्यां हो लागे पाप अतीवकै॥ करो जिन धर्मनों अनुमोदनां॥ १॥ भोजन विवध प्रकारनां आरंभ कियां हो निपजे छे तायकै॥ छहुं कायारी हिन्सा हुवे। भोगवियां हो किञ्चित् धर्म न थाय कै॥ करो॥ जो खाणां पीणां से धर्म हुवे। तो श्रावक तिणनें हो त्याग्यां पाप पंडूरकै वलि दूजांनें त्याग करावियां। अनुमोद्यां हो लागे अघ भरपूरकै॥ करो॥ ३॥ सर्व

व्रत्तो साधू भला । ते टाली हो बाकी संसारी जीवकै । त्यांरो खाणों पीणों वलि पहरणों । सब अव्रत मे हो जाणों दुरगति नीवकै ॥ करो ॥ ४ ॥ सावद्य खोटा जाणिनें । मुनि त्याग्या हो काम भोगादि मोयकै ॥ ते सावद्य ग्रहस्थे कियां । तिण मांहि हो धर्म पुन्य किम होयकै ॥ करो ॥ ५ ॥ इमहिज मृषा बोलिया । बोलाव्यां हो अनुमोद्यां एककै ॥ अदत्त मैथुन सेवियां । सेवायां हो थावे व्रत मे छेका कै ॥ करो ॥ ६ ॥ वलि पंचमूं आस्रव परिगरो । ते राख्यो हो पाप लागै छै सोयकै ॥ ते दूजा ने देयां दवावियां । भलो जाण्या मत जाणो धर्म कोयकै ॥ करो ॥ ७ ॥ ये पांचू त्याग्या मे धर्म छै । तो सेवतां हो अशुभ कर्म बंधायकै ॥ अनेरा ने सेवायां अनुमोदियां । तीनू करणा हो एक सरीषा थाय कै॥ करो ॥ ८ ॥ दशमां अङ्ग मे जिन कह्यो । आस्रव छाड्यां हो श्री जिनजीरा धर्म कै ॥ व्रत अव्रत जे ओलख्यो । तेही जाणै हो इण बात रो मर्मकै ॥ करो ॥ ६ ॥ कहै साता दियां साता हुवै ॥ ते नहिं जाणै हो श्री जिन धर्म नों बात कै ॥ जे धर्म अधर्म न ओलख्यो । त्यांरै घट मे हो वसियो घोर मित्थ्यातकै ॥ करो ॥१०॥ श्री सुयगडांग सूत्र में तिण ने सूरख हो भाष्यो श्री जिनराज कै । आज

मार्ग सूं अलगो कह्यो। इम इत्यादिक हो षट बाल मिछाण के ॥ करो ॥ ११ ॥ अशुद्ध प्ररूपणा छांडनें। शुद्ध प्ररूप्यो हो जिन आज्ञा मे धर्म के ॥ तरणों वर्ण्यो स्व पर तणो ते अनुमोद्यां हो पावै शिव सुख पर्म के ॥ करो ॥ १२ ॥ ये ज्ञान दरशन चारित तप भला। भावदधि मे हो तिरवाने जहाजके ॥ ते सम्यक् प्रकारे सेविया। सेवाया हो अनुमोदूं ते आजके ॥ करो ॥ १३ ॥ अरिहन्त सिद्धनें आयरिया। उवझाया हो वलि मोटा अणगार के ॥ तेहनी स्तुति सेवा करी। अनुमोदूं हो विनय करि नमस्कार के ॥ करो ॥ १४ ॥ सामाईक पोसा किया। छहूं आवश्यक हो किया कालों कालके ॥ उद्यम कियो जिन धर्म मे। अनुमोदूं हो पालया व्रत रसालके ॥ करो ॥ १५ ॥ निरदोष दान सुपात्रनें दियो। देवायो हो भलो जाण्यों जेहके। तेहनी करूं अनुमोदनां। अलगो थावै हो कर्म रंज खेह के ॥ करो ॥ १६ ॥ दया अनुकम्पा जे करी। करावी हो भली जाणी तास के ॥ संजम जीवत वंछियो। मन बच काया हो अनुमोदूं जासके ॥ करो ॥ १७ ॥ शुद्ध साधु निग्रन्थ सें। मैं सुणियो हो वारूं सरस बखानके ॥ सूत्र तणां बच सांभल्या। अर्थ धारया हो ते अनुमोदूं

बान के ॥ करो ॥ १८ ॥ दान शील तप भावना। मैं सेव्या हो सेवाया धरि चित्त के ॥ समकित दृढ़ करि श्रासथा ॥ अनुमोदूं हो ते परम पवित्त के ॥ करो ॥ १९ ॥ जिन शाशन अधिक दृढावियो। वलि गाया हो गणिनां गुण ग्राम के ॥ अत्यन्त हर्ष धरि ऊचरया। अंतम मनसूं हो अनुमोदूं तांम के ॥ करो ॥ २० ॥ इत्यादिक सुकृत तणौं। अनुमोदन हो एह सप्तम् द्वार के ॥ श्रावक तन मनसें करै ॥ आनन्द थावे हो दशमों ढाल विचार के ॥ करो ॥ २१ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

आनन्द थावें दुःख जावे सुख पावे धर्म सूं। जे भविक भावै सुबुद्धि पावै द्रप मिटावै नर्म सूं। इम जाण व्रत पचखांण कीजे दान दीजे पात्र नें अव्रत तजीजे व्रत पालीजे आराधीजे याव नें ॥ १ ॥

॥ इति सप्तम् द्वार ॥

॥ अथ अष्टम भावना द्वार ॥

॥ दोहा ॥

अष्टम द्वारे भावना। भावे श्रावक सार।
अशुभ कर्म दूरा टले। पावे सुख अपार ॥ १ ॥

तन धन जोवन कारमों। बादल जेम बिलाय।
देखो दिनकर तेहनों। तीन अवस्था थाय ॥ २ ॥
डाभ अणीं जल बिन्दुवो। जीतव जाणो तेम।
तिणमुं उत्तम नर नारियां। राखो धर्म सं प्रेम ॥३॥

॥ ढाल इग्यारमीं ॥

श्रेयांस जिनेश्वरकूं प्रणमुं नित वेकर जोडिरे ॥ एदेशी ॥

तज विभाव निज भावमें। रमिये नर चतुर सुजाणरे ॥ निज आतम मे गुण घणां। मत पर गुण म सुख जाणरे ॥ मत पर गुण में सुख जाण श्रावक गुण ग्राहिका भावो भावना एम० उदाररे ॥ १ ॥ अनन्त ज्ञान दरशन भला। वलि चारित वीर्य अपाररे एह निजगुण हैं थांहिरा। जरा अन्तर ज्ञान विचार रे ॥ जरा ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २ ॥ निजगुण बिन सहु कारमा। विणसंता न लागे वार रे ॥ अथिर जोवन धन जाणिये। जिम वीजली नो चिमत्कार रे ॥ जिम ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ३ ॥ ए तनु जे तूं पामियो। ते खिण मे भंगुर थायरे ॥ तूं अविनाशी आतमां। इण संग क्यों रह्यो लोभायरे ॥ इण ॥ श्रा ॥ भावो ॥४॥ अशुभ कर्म थी आतमा। मेलो होय रह्यो अति जासरे ॥ शुभ परिणाम सु ध्यायिनें। प्रगट करिये गुण खासरे ॥ प्रगट ॥ श्रा ॥ भावो ॥ ५ ॥ मनुष जनम

दुरलभ लह्यो । आज चेत पुन्य प्रमाणरे ॥ उत्तम कुल आय उपनूं । पायो आयु शुभ दीर्घ जाणरे ॥ पायो ॥ आ ॥ भावो ॥ ६ ॥ बल प्राक्रम इन्द्रियां तणों। मिलियो मतगुरु नों संयोगरे ॥ तो पिण धर्म करे नही। एहवो मूर्ख मूढ़ आयोगरे ॥ एहवो ॥ आ॥ भावो ॥७॥ पुत्र कलत्र परवार सें । धन धान परिग्रह मांहिरे ॥ मूर्छित मोहनी छाक से । म्हारो २ कर रह्यो ताहिरे ॥ म्हारो २ ॥ आ ॥ भावो ॥ ८ ॥ ए सहु स्वार्थनां सगा । मतलब बिन न करे सारे ॥ वेदन बंटावे नहीं । पुत्रादिक जे परिवाररे ॥ पुत्रा ॥ आ ॥ भावो ॥ ६ ॥ पूर्वे जेहवा बांधिया । तेहवा उदय हुवे पुन्य पापरे ॥ सुख दुःख उपजे जीवरे । ते भोगवे आपो आपरे ॥ ते भोगवे ॥ आ ॥ भावो ॥ १० ॥ वेदन उपजे शरीर में । तिण अवसर एम विचाररे ॥ बार अनन्ती भोगव्या । दुःख नरक निगोद मझाररे ॥ दुःख ॥ ॥ आ ॥ भावो ॥ ११ ॥ तेतीश सागर लगि सह्या । दुःख सातमी नरक अनन्तरे । तो यह मनुष्यनां भव तणां । राई समकिचित् हुन्तरे ॥ राई ॥ आ ॥ भावो ॥ १२ ॥ जे मैं समकित बिन क्रिया । पाली कष्ट सह्यो बहु वाररे ॥ आतम कार्य सर्यो नहीं । समकित बिन नहीं भव पाररे ॥ समकित ॥ आ ॥ भावो ॥१३॥

छिव समकित व्रत पाविया। आयो रतन चिन्तामणि हाथरे॥ तो यह वेदन समपणें। सह्या लाभ अत्यन्त विख्यातरे॥ सह्या॥ आ॥ भावो॥ १४॥ कष्ट खम्यां सम भाव सें। टूटै अशुभ कर्म अघ जालरे॥ उष्ण तवे जल बिन्दु ज्यों। भस्म हुवै कांद्यो परम कृपालरे॥ भस्म हुवै॥ आ॥ भावो॥ १५॥ सूको तृण पूलो अग्नि में। शीघ्र पणें दहै तिम कर्मरे॥ पंचमां अङ्ग विषे कह्यो। इम जाणि कीजै जिन धर्मरे॥ इम॥ ॥ आ॥ भावो॥ १६॥ अल्पकाल दुःख सहन थी॥ शिवपाम्यां गजसुखमाल रे॥ चरम जिनन्द चौबी-समा॥ कष्ट खमिया अति सुविसालरे॥ कष्ट॥ आ॥ ॥ भावो॥ १७॥ बहु वर्षे तीव्र वेदना। सही चक्री मनत कुमाररे॥ मुक्ति गया कर्म क्षय कारी। पाया आतमीक सुख साररे॥ पाया॥ आ॥ भावो॥ १८॥ मुनि जिन कल्पी उदेरिनें। लेवै कष्ट जे विविध प्रका-ररे॥ तो थारै ए वेदनां सहभों उदय थई इण काररे॥ सहभों॥ आ॥ भावो॥ १९॥ सम भावे अैयामियां कर्म राशि तणू चक्र चूररे॥ किञ्चित् कालमे दुःख सह्यां। पावै सुगति सुख भरपूररे॥ पावै॥ आ॥ भावो॥ २०॥ अतिरोग पीड़ाणां जगत मे। दुःख भोगे अज्ञानी जीवरे॥ तो हूं ज्ञानी क्षिमकरूं॥

बेदन उपज्यां रुदन करतीवरे ॥ बेदन ॥ श्रा ॥ २१ ॥
नव महीनां गर्भावास मे । परवश पायो अति दुःखरे ॥
तो स्ववश ये वेदनां । खमियां पर भय में घणों
सुखरे ॥ खमियां ॥ श्रा ॥ २२ ॥ पुद्गल सुख ये
पामला । मिलिया वार अनन्त अथायरे ॥ गृद्ध पणें
तिण मे रच्यां । पड़े शिव सुखनों अन्तरायरे ॥ पडे ॥
॥ श्रा ॥ भावो ॥ २३ ॥ आर्त रौद्र निवार नें । ध्यावो
धर्म ध्यान दिल मांहिरे ॥ अनित्य असरण जे भावनां ।
भायां भव २ मे दुःख नांहिरे ॥ भाया ॥ श्रा ॥ भावो ॥
॥ २४ ॥ पर भवसें आयो एकलो । वलि जासी एका
एकरे ॥ काचे भरोसें कांई रहो । जरा समझो आणि
विवेकरे ॥ जरा ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २५ ॥ इम जाणी
शुद्ध निरमलो । पालो संजम सतरे प्रकाररे ॥ च्यार
कषाय निवार नें । उतरो भव सायर पाररे ॥ उतरो ॥
॥ श्रा ॥ भावो ॥ २६ ॥ ज्यो साधू पणो नहीं ग्रहि-
सको तो श्रावक ना व्रत बाररे ॥ निर अतिचारे पा-
लियां । थावे नेडा शिव सुख सागरे ॥ थावे ॥श्रा॥ भावो
॥ २७ ॥ त्याग वैराग बधाविये । करिये उत्तम साधू नी
सेवरे ॥ निन्दा विकथा परहरी । छांडो क्षुद्र भाव
अहमेवरे ॥ छांडो ॥ श्रा ॥ भावो ॥ २८ ॥ मतकरो
धननूं गारवो पायो बार अनन्त अपाररे ॥ सुख दुःख

बहुला पाविया। राखो चितमें समता साररे ॥ ॥ राखो ॥ आ ॥ भावो ॥ २९ ॥ धर्म अपूर्व पावियो। मिली सद्गुरु नी जोगवायरे ॥ तो ढील करो कांई कारणीं। रात दिवश ये योंही जायर ॥ रात ॥ आ ॥ ॥ भावो ॥ ३० ॥ रोग जरा जिहां लगि नहो। पाणी पहिलां थी बांधो पाजरे ॥ मित्र स्नेही ज्यो आपणां। देवो त्यांनें धर्म नुं साजरे ॥ देवों ॥ आ ॥ भावो ॥ ॥ ३१ ॥ धर्म करन्ता जीवनें ॥ मत पाडो तिणरे अन्तरायरे ॥ तेहनां फल कडुवा घणां। पावै भव २ दुःख अथायरे ॥ पावे ॥ आ ॥ भावो ॥ ३२ ॥ इम जाणी गुणवंत नां। गावो गुण छे जे तेह म्हांयरे अष्टम् द्वारे ज्ञारमीं ॥ धर्म करसी ते नहीं पिछतायरे ॥ धर्म ॥ आ ॥ भावो ॥ ३३ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

अनित्य १ अशरण २ एकान्त ३ भावन, संसार ४ अनन्त ५ अशुचि ६ भावनां। आस्रव ७ संवर ८ निरजरा ९ फुन लोकालोकनीं ध्यावनां १०। धर्म ११ नें वलि बोधबीज १२ ये बारे भावना भाविये। परिणाम शुद्ध थिर भाव राखो। संचित पाप पुलाविये ॥ १ ॥

॥ इति अष्टम् द्वार ॥

॥ अथ नवमों अणशण द्वार ॥

॥ दोहा ॥

सामायक पोसा करै । प्रतिक्रमणां शुभ ध्यान ॥
ममता रसमें झूलता । धन २ ते गुणवान ॥ १ ॥
कुविमन तज भगवन्त भज । राग द्वेष विहुं टार ॥
स्व आतम में गुण घणा । करिये उज्वल सार ॥ २ ॥
संचित पाप मिटायवा । छेहलै अवसर मार ॥
नवमें द्वार कह्यो भलो । अणसणनूं अधिकार ॥ ३ ॥

॥ ढाल बारमीं ॥

सीतां भविषण नें कहै निशंक सुं ॥ एदेशी ॥

अनन्त मेरु सम पुद्गल भोग्या । मीठा अमिय समानोंरे ॥ इक २ लोक आकाश प्रदेशें । बार अनंत पिछानोंरे धन २ गुणवन्त अणशण धारै ॥ १ ॥ अनंत पुद्गल लेई पाछा वमिया । भव २ मांहि विचारोरे तोही चेतन तुज भूख न भागी । तृष्णा अधिक अपारोरे ॥ धन २ ॥ २ ॥ सरस भोजन मन गमता पाया। वलि मन गमतो पाणीरे ॥ प्रभात समें उठ्यो तब भूखो। अणशण करै इम जाणीरे ॥ धन २ ॥ ३ ॥ द्विविध अणशण श्रीजिनवर भाख्यो । पादोपगमन जाणोंरे ॥ भात पाणींनां त्याग ते दूजो । जावज्जीव प्रमाणोंरे ॥ धन २ ॥ ४ ॥ पूर्व सनमुख वेकर जोड़ी। नमोथूणं सिद्धां

नें करियेरे ॥ दूजो अरिहन्त भगवन्त प्रभुनें । तीजो धर्म आचारज नें उचरियेरे ॥ धन २ ॥ ५ ॥ अशण खादम स्वादम प्रति तजनें । अवसर जाणि पाणी परिहारोरे ॥ तृषा परिसह आय ऊपनां । अडिग रहै सुविचारोरे ॥ धन २ ॥ ६ ॥ मात तात सुत बंधव त्रिया । इत्यादिक परवारोरे ॥ हाट हवेली बाग बगीचा । तेहथी स्नेह निवारोरे ॥ धन २ ॥ ७ ॥ रतन करंडिया समये काया । तेहनें पिण वोसरावेरे ॥ सावध कारज नहिं करै तिणसें । धर्म ध्यान चित्त ध्यावेरे ॥ धन २ ॥ ८ ॥ आनन्द श्रावक कियो संथारो । अवधि ज्ञान उपज्यो आईरे ॥ सुधर्म कल्पै जाय ऊपनूं । एकावतारी थाईरे ॥ २ धन २ ॥ ६ ॥ सम परिणामां कष्ट सह्यां थी । कर्म निरजरा थावेरे ॥ संसार भ्रमणनूं छेद करै फुन । पुन्यरा थाट बंधावेरे ॥ धन २ ॥ १० ॥ इण पर लोकनी वंछा न करतो । जीतव मर्ण न चाहवेरे ॥ काम भोगनी आशा तजनें । गुणवन्त नां गुण गावेरे ॥ धन २ ॥ १२ ॥ शिव सुख सामी दृष्टि राखै । रमण करै निज गुणमेरे । आतम सुख अभिलाषी श्रावक । सार न जाणैं सुख पुन्यमेरे ॥ धन २ ॥ १२ ॥ नवमे द्वारे ढाल बारमी । कह्यो अणशण अधिकारोरे ॥ छेहले अवसर करै गुणवन्त

श्रावक । पामै सुख अपारोरे ॥ धन २ ॥ १३ ॥

॥ इति ॥

॥ कलश ॥

अपार सुख शिवनां कह्या तिहां जन्म जरा मृत्यु नहीं । नहिं रोग सोगरु भोग बंछा वलि दुःगंछा नहिं रही ॥ जिहां रमन है उपियोग केवल ज्ञान दरशन में सही । सहु द्रव्य भावनां जाणछै प्रभु सिद्ध लोकाग्रे रही ॥ १ ॥

॥ अथ दशमूं द्वार ॥

॥ दोहा ॥

दशमें द्वार करै सही, पांच पदा नु' जाप ।
विघ्न मिटै स्मरण कियां, क्षय थावे सहु पाप ॥ १ ॥
अरिहन्त सिद्धनें आयरिया, उवझाया अणगार ।
भजन करै इण पांचनूं, तेह थी जय जयकार ॥२॥

॥ ढाल तेरमीं ॥

. पना मारू निरखण दे गन गोर । तथा आतम सुभाव ओलख करणी सु' पामैं भव जल तीर ॥
॥ एदेशी ॥

शुभ परिणाम वलि शुभ लेश्या । प्रशस्त भला-आतम गुण प्रगटाय । सुगण जन । जपिये श्री नव-कार ॥ १ ॥ जेहनें सखाय पणें करि पामे । परभव सम्पति सार ॥ अण भोगिक सुर पदवी पामे । इन्द्रा-दिक अवतार ॥ इन्द्रादिक ॥ सु ॥ इन्द्रा ॥ जी थांरो आतम ॥ सु ॥ जपिये श्री नवकार ॥ २ ॥ पंच परमेष्ट समकित युत जपियां । भव दधि गोपद जेम ॥ शीघ्र पणें तरिये शिव वरिये । फुन अञ्जली जल तेम ॥ ॥ फुन ॥ सु ॥ फुन ॥ जी थांरो ॥ आ ॥ जपिये ॥३॥ वछड़ा चरावतो बालक आयो । नदी पूर देख तिंवार मंत्र नवकार जपी मांहि पैठो । सरिता थई दोय डार ॥ सरिता ॥ सु ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ४ ॥ रतनवती जे भीलनी नारी । तिण सुमस्यो नवकार ॥ अध्यवसाय ॥ अहो निशि धर्म ध्यान दिल धरता । कर्म पटल खय थाय ॥ कर्म ॥ सुगण जन ॥ जी थांर किंचित कालमें पुन्य उपावी । पांचमें कल्प अवतार ॥ पांचवें ॥ सु ॥ पांच जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ५ ॥ शर्प तणो थयो पुष्पनीं माला । श्रीनवकार प्रभाव ॥ श्रीमती सती कीर्ति लहि भारी । उभय भवें सुख सार ॥ उभय ॥ सु ॥ उभय भवें ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ६ ॥ जहाज डूबंता सेठ समुद्र । गुणियों श्री नव-

कार ॥ सहाय कियो सुर जहाज उठावी । मेलदो पैली पार ॥ मेलदो ॥ सु ॥ मेलदो पैली पार जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ७ ॥ श्री नवकारनुं स्मरण करतां दूर टलै जंजाल ॥ वैरी दुस्मन डायण सायण । नाश जावै तत्काल ॥ नाश जावै ॥ सु ॥ नाश जावै ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ८ ॥ सम दृष्टी श्रावक गुणवंता । जे सुमरे नवकार ॥ जेहनां फलनुं कहिवुं किस्युं ते । पामें भवजल पार ॥ पामें भवजल पार ॥ सु ॥ पामें ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ ९ ॥ इम जाणों स्मरण नित करिये । धरिये आतम ध्यान ॥ निरवध करणी फुन आचरिये ॥ सुनिये श्रीजिन बान ॥ सुनिये ॥ सु ॥ सुनिये ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १० ॥ निज-पर भाव विलोक यथार्थ ॥ शुद्ध द्रव्य षट काय ॥ आरंभ छाड़ तोड़ अघ घाती । शिव गति नेडो थाय ॥ शिव ॥ सु ॥ ११ ॥ मच्छर भाव तजो नित तूं तो । गुणवंतनां गुण गाय ॥ ज्ञाता मूल विषे जिन भाख्यो । गोत तीर्थंकर बंधाय ॥ गोत ॥ सु ॥ गोत जी थारो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १२ ॥ श्री जिन शासण पंचमें अर्को भिक्षु गणों सुखदाय ॥ विविध मर्याद बांदि गण वत्सल मिथ्या तिमिर हटाय ॥ मिथ्या ॥ सु ॥ मि ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १३ ॥ द्वितिये पाट भारीमाल गणा-

धिप। तृतिय पाट ऋषिराय ॥ तुर्य जयाचार्य महा प्रभाविक। लाखां ग्रन्थ बणाय ॥ लाखां ॥ सु ॥ लाखां जी थांरा ॥ सु ॥ जपिये ॥ १४ ॥ मघवा सम मघराज पंचमे। तसु पट माणिक.कहाय। सप्तम पट श्री डालचन्द गणी। दीर्घ दृष्टी सुख दाय।। दीर्घ ॥ सु ॥ दीर्घ ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १५ ॥ तेहनें पाटे वर्तमान मे। शोभत जिम जिनराय ॥ श्री श्री कालूराम गणीश्वर ॥ प्रणम्यां पातिक जाय ॥ प्रणम्या ॥ सु ॥ प्रणम्यां ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १६ ॥ यह जिन शासण सुखनुं वाशन। ये गणनें गणिराय ॥ अहो निशि सेवा करलें भविजन मत कर अवरनी चहाय ॥ मत ॥ सु ॥ मत ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १७ ॥ इण शासण मे रक्ति रहै। त्यांरो करत सदा सुर सहाय ॥ ऋद्धि वृद्धि थानै दुःख मिट जावै विघ्न न होवे कोय ॥ विघ्न ॥ सु ॥ विघ्न ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १८ ॥ च्यार तीर्थ सुख धाम स्वाम सुभ। श्री कालूगणि राय ॥ तेहनुं श्रावक गुलाब कहै ॥ थयो आनन्द हर्ष सवाय ॥ आनन्द ॥ सु ॥ आनन्द ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये ॥ १६ ॥ तसु आदेशी संयम भेषो। आतमा अर्थी जान ॥ पुनमचन्द मुनि शान्ति मुद्रा। पूनमचन्द समान।: पूनम ॥सु॥ पूनम॥ जी थांरो

॥ सु ॥ जपिये ॥ २० ॥ चंप तरु सम चंपालाल ऋषि। ज्ञान दोलत वंत जान ॥ दोलतराम मुनि ये तीनूं। बांचे सरस बखाण ॥ वांचे ॥ सु ॥ वांचे ॥ जी थांरो सु ॥ जपिये ॥ २१ ॥ उंगणीसय बहोत्तर सम्वत् में। जेष्टमास कहिवाय। तेरा ढाल दशविध आराधन। कहि जयपुर सुखदाय ॥ कहि ॥ सु ॥ जी थांरो ॥ सु ॥ जपिये श्री नवकार ॥ २२ ॥ इति ॥

॥ कलश ॥

सुखदाय आराधंन करै इम, भविक मन उच्छाह ही। ते पाप पंक निशंक टाले, व्रत संभाले उमाह ही ॥ श्री कालू गणी महाराज मुनि सिरताज तासु पसाय ही। कहै गुलाब निज गुन मात्र प्रगटै, भण्यां आनन्द थाय ही ॥ १ ॥

॥ इति दशविध आराधन ॥

॥ अथ स्वामी श्री भीखनजी कृत ॥

॥ श्रावक गुण सज्झाय ॥

॥ किकेईरे कुकला किलवे ॥ एदेशी ॥

भिन भिन जाणेंरे श्रावक जीवनें। जाणें अजीव पुन्य पापोजी ॥ आश्रवनें जाणैरे कर्म लगावतो। संवर टाले संतापोजी ॥ भगवंत भाख्यारे श्रावक यहवा ॥ १

॥ निरजरा पाडैरे ढीलो बंधनै। करणी करै तिण हेतोजी ॥ मुक्ति तणां सुखजाणैं सास्वता। उघड्या अभ्यन्तर नेतोजी ॥ भ ॥ २ ॥ पोतै परखैरे गुरुनें अकल सूं। अन्तरंग ज्ञान विचारोजी ॥ भेष देखी श्रावक भूलै नहीं। देखै शुद्ध आचारोजी ॥ भ ॥ ३ ॥ व्रतांनें जाणैरे माला रतनां तणी। अव्रत अनर्थ खाणोंजी ॥ रेणादेवी ध्यो पिण ये बुरी। त्यागी मांठी जाणोंजी ॥ भ ॥ ४ ॥ आदरिया व्रत साधु मांहिला। ये म्हांरे जिनधर्मीजी ॥ शेष रह्या जे कांम संसारनां। तिणसुं बंधता जाणें कर्मीं जी ॥ भ ॥५॥ श्रावक जाणैरे श्रीजिन आगन्या। जाणें धर्म अधर्मीजी जिण करणी मे नहिं जिन आगन्या ॥ तो बंधता जाणें कर्मीजी ॥ भ ॥ ६ ॥ परचो पाखंडियांरो श्रावक नहिं करै२ तिणसु वातोजी ॥ नीचो मस्तक श्रावक नहिं करै। नहिं करै ऊंचो हातोजी ॥ भ ॥ ७॥ अमायो किणरो लागै नही। नहीं करै कूडो ताणोंजी ॥ धर्म ठिकाणैरे झूट बोलै नहीं। पालै श्रीजिन आंणोजी ॥ भ ॥ ८ ॥ गुरुनें देखैरे दोष लगावता। तो तुरन्त करै नीकालोजी ॥ लाला लोलोरे कर ऊठै नहीं। श्रीजिन शासणरी पालोजी ॥ भ ॥ ९ ॥ कुगुरु वंदनारो फल तिहां ओलखै। रूलै अनन्तो कालोजी ॥ आगल गुरांनें श्रावक,

बंदै नहीं । भगवंत वचन संभालोजी ।। भ ।। १० ॥ कुगुरुनें जाणेंरे काला नागज्यूं । करडो तिणरो डंकोजी ।। मुक्ति नगरनां ते छै धाडवी । चोड़ खासे निःशंकोजी ।। भ ।। ११ ।। सुणै बखाणरे साधां आगलै । येकाकी चित्त ल्यायोजी ।। साधु कहै ते सुंण सुंण हुलसै । मन रलिया यत थायोजी ।। भ ।। १२ ।। सद्गुरु वांदैरे भलै मन भावसुं । नीचो शीश नमायोजी ।। तीन प्रदक्षणां दो कर जोडिनें । पगांरै मस्तक लगायोजी ।। भ ।। १३ ।। मार्ग जातांरे मुनिवर ज्यो मिलै । बांदी हर्षित थायोजी ।। विकसत थावैरे मुनिवर देखनें । वलि करै घणीं नरमायोजी ।। भ ।। १४ ।। बारा व्रतरे आदरतो रहै । अव्रत जे आगारोजी ।। पोतै सेवै सेवावै अवरनें । तिणमे नही श्रद्धै धर्म लिगारोजी ।। भ ।। १५ ।। व्याज उधारोरे धन ल्यावै पारको । घररो कांम चलायोजी ।। धम बतावैरे धन ल्यावो पारको । दूसडो न करै अन्यायरोजी ।। भ ।। १६ ।। लोक कहैछैरे निन्दक पापियो । ते निन्दा नरक ले जायोजी ।। श्रावक निन्दारे नहिं करै कीहनीं । जिन शासण मांहि आयोजी ।। भ ।। १७ ।। जेतला द्रव्य छै लोका लोक मे । जाणें तिणरो न्यायोजी ॥ द्रव्य खेत कालनें वलि भाव सुं । जाणें गुण पर्यायोजी

॥ भ ॥ १८ ॥ मोसा मर्म न बोलै किहनें। न करै कूडी बातोजी ॥ कूड कथन नहीं करै श्रीजिनमती । नहिं करै दगो नें घातोजी ॥ भ ॥ १९ ॥ ओछा बोल न बोलै किहनें । गुण कर गहर गंभीरोजी ॥ चरचा करतां रे विच बोलै नहीं । जेम छाली पीवै नीरोजी ॥ भ ॥ २० ॥ लोक सुणें वखाण साधां आगलै । नहिं पाडे तिणमें वेदाजी ॥ कर्म घणा मैलो समझै नहीं करै क्रोधनें खेदाजी ॥ भ ॥ आ ॥ २१ ॥ इति ॥

॥ अथ जिन आणां धर्म स्तवनम् ॥

॥ राग आसावरी ॥

भविका जिन आणां धर्म धारो । येतो मानों कह्यो हमारोरे ॥ भविका जिन ॥ ए आंकडी ॥

श्री तीर्थं पति धर्म धुरंधर । जग वत्सल सुखकारी ॥ अनन्त ज्ञान दरशन चारित्र धर । तसु कीजें नमस्कारोरे ॥ भविका जिन० ॥ १ ॥ ज्ञान दर्शन चारित्र तप नौका । मोक्ष मार्ग ये च्यारो ॥ श्रीजिन आणा मे चिहुं आया । उत्ताध्ययन अधिकारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ २ ॥ सवरनें वलि निरजरारे । धर्म ये दोय प्रकारो ॥ ये भल रीत आराध्यां चेतन । पासैं भव नुं पारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ३ ॥ पंच महाव्रत साधु केरा । आ-

वक ना व्रत बारो ॥ जिन आगा में ये विहूं आया। अविरत रह गई न्यारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ सर्व व्रत धारी संजती कहिये। अविरत असंजति धारो॥ व्रताव्रती श्रमणोपाशक। ते व्रत जिन आग संभारोरे ॥ भ ॥ ॥ जिन० ॥ ५ ॥ श्रावक नौं खाणों पीणों ते। सावद्य जोग व्यापारो॥ जिन मुनि आग न देवै तिणरो। धर्म न होवै लिगारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ६ ॥ खाणां पीणां नें धन धानादिक। अविरत मे अधिकारो॥ उववाई सुयगड़ा अङ्ग मांही। पाठ देख उर धारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ७ ॥ मुझ आणां मे म्हांरो धर्म छै। आचाराङ्ग संभालो॥ चरम जिनेश्वर बीर परमेश्वर। भाष गया तंत सारोरे ॥भ ॥ जिन० ॥ ८ ॥ तेह धर्म नां दोय भेद छैं। दशवै कालिक संभारो॥ अहिंसा है जिण कर्तव्य मे। तहां संजम तप सारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ९ ॥ सुगुरु आशीश पिण येहज दीनी। आगमरेस विचारो॥ आलस मत करीज्यो आणां में। उद्यम आणां वारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ १० ॥ निरवद्य कार्य्य मांहि आज्ञा। जिन मुनि दे इक धारो॥ सावद्य मांहि आज्ञा मत जाणों। नहीं संदेह लिगारोरे ॥ भ ॥ जिन० ॥ ११ ॥ करण करावण वलि अनुमोदन॥ येह तीनूं इकसारो॥ श्रीजिन आज्ञा मिर

धारीजै। तब होवे निस्तारोरे॥ भ॥ जिन० ॥१२॥ कोई आज्ञा मे पाप बतावे। धर्म जिन आज्ञा बाहारो। दोनूं बातां अशुद्ध प्ररूपे॥ ते किम पामैं भव पारोरे॥ भ॥ जिन॥ १३॥ श्री जिनमत का साधू बाजै॥ भाषै बिना बिचारो॥ कुदृष्टान्त देई भोला नें॥ बह-कावें निराधारोरे॥ भ॥ जिन० ॥ १४॥ जो थांरै तिरणों होवे तो। शुद्ध साधू गुरु धारो। भेष धारयां री सङ्गति तजनें। अन्तर ज्ञान बिचारोरे॥ जिन०॥ ॥ १५॥ जो पुरो समझ पड़ै नही तो। शुद्ध जपो नवकारो॥ गुणवन्तो का गुण गाई नें। अशुभ कर्म सब टारोरे॥ भ॥ भ॥ जिन०॥ १६॥ निन्दा विकथा दूर तजो नें सूत्र सुणों सुखकारो॥ विण आज्ञा बाहर धर्म कहि नें। परभव मतना बिगारोरे॥ भ॥ जिन०॥ १७॥ अहिंसा धर्म मुखसुं कहि नें मत करो हिंसा प्रचारो॥ लोंकाचारीकृत ग्रन्थ बांचणे। अहलो जन्म मत हारोरे॥ भ॥ जिन०॥ १८॥ ठांम २ जिन आगम मांही॥ आज्ञा अधिक उदारो॥ धारो जिन आणा धर्म नींको॥ गुलाब कहै सुख कारोरे॥ भ॥ जिन०॥ १९॥ इति॥

॥ अथ जिनमार्गस्तवनम् ॥

॥ राग उजाड़ में ॥

शुद्ध मग सांचो भूलै मतजाय । प्यारे तोनें कहूं कूं समजाय ॥ शुद्ध ॥ ए आंकड़ी ॥

दान शील तप भाव ये च्यारों । शिवपुर कीरा राह ॥ झूंठो पंथ छांड अब प्राणी । ज्यो आत्म सुख चाह ॥ शु ॥ १ ॥ दान सुपात्रं दोहिलोरे । भाष्यो श्री जिनराय ॥ चित वित पात्र तीनूं शुद्ध मिलियां । मन बांछित फल पाय ॥ शु ॥ २ ॥ चित शुद्ध वस्तु कहाय ॥ पात्र सु साधू जानियेरे । जे न हणें षट-काय ॥ शु ॥ ३ ॥ देतां दाता दान सुपात्रं । संचित कर्म हटाय ॥ उत्कृष्टो रश आवियांरे । तीर्थंकर पद पाय ॥ शु ॥ ४ ॥ चौथे ठाणें भाखियोरे ॥ पंच-मुद्देशा मांय ॥ कुपात्र ते कुक्षेत्र छैरे । बोयां निर-फल थाय ॥ शु ॥ ५ ॥ असंजती आविरती नें रे । अष्टम् शतक कहाय ॥ छट्ठे उद्देशे गौतम पूछ्यो । वीर प्रति सुखदाय ॥ शु ॥ ६ ॥ सचित अचित प्राशू अप्राशू । प्रति लाभ्यां स्युं थाय ॥ जिन कहै एकान्त पाप हुवेरे ॥ निरजरा किंचित् नांय ॥ शु ॥ ७ ॥ आनन्द श्रावक लियो अभिग्रह । उपाशक दशा

कहाय । अन्य तीर्थी नें आजथीरे । देवूं देवावूं नांहि ॥ श्रु ॥ ८॥ सूगा लोढा नें देखु नें रे । गौतम जिनपे आय ॥ पूछे स्यूं दीधो इण पूर्वे । तेहना यह फल पाय ॥ श्रु ॥ ६ ॥ तिणसुं दान कुपात्र नांरे । फल अति कटुक कहाय। हिन्सक भणी हिन्सा करि दीधां धर्म किहां थी थाय ॥ श्रु ॥ १० ॥ सावद्य दान प्रशं-सियांरे । घातक कहिये ताहि ॥ सुयगड़ा अङ्ग ग्यारमे अध्यन में । वीसमी गाथा मांहि ॥ श्रु ॥ ११ ॥ दान निषेद्यां लेणवालानी । वृत्ती नूं छेदक थाय ॥ तिण कारण वर्तमान काल में । मून करै मुनिराय ॥ श्रु ॥ ॥१२॥ षटकायांरी रक्षा निमित्तें । पुन्य नहीं कहणों ताय ये पिण सुयगडा अङ्गमेरे । भाष्यो श्री जिनराय ॥ श्रु ॥ १३ ॥ वलि पंचम् अध्ययन मेंरे । बत्तीसमीं जे गाह ॥ दान देतां लेतां तिण अवसर ॥ मुनि न कहै हां नां ॥ श्रु ॥ १४ ॥ भ्रमण हेतु संसार नोरे । ग्रहस्थि भणी जे दान ॥ देवो त्यागणों मुनिवरे । सुयगड़ा अङ्गे जान ॥ श्रु ॥ १५ ॥ वलि प्रायश्चित चौमास लु'रे ॥ अनुमोद्यां सें आय ॥ निशीथ उद्देशे पनरमेरे । भाष्यो श्री जिनराय ॥ श्रु ॥ १६ ॥ श्रावक नोजे खाणों पीणों अव्रत में कह्यो तेह ॥ सूत्र सुया गड़ा अङ्ग दूजे श्रुतस्कंधे । द्वितीय अध्येयन विखेह

श्रु ॥ १७ ॥ भाव शस्त्र अविरत कह्योरे। ठाणांयङ्ग दशमे ठांण ॥ तेह शस्त्र तीखो कियां थी। धर्म पुण्य मत जाण ॥ श्रु ॥ १८ ॥ श्रावकनीं जे आतमारे। अविरत नीं अपेक्षाय ॥ शस्त्र अछै छकायनोरे। निर्मल विचारो न्याय ॥ श्रु ॥ १९ ॥ सामाइक मे पिण कहीरे। अधिकरण जिनराय ॥ भगवती सप्तम् शतकमेरे। प्रथम उद्देशा मांय श्रु ॥ २० ॥ खाणां पीणां पहरणांरे। त्याग्यां थी हुवे धर्म ॥ भोग्यां भोगायां वलि अनुमोद्यां। बंधे अशुभ अघ कर्म ॥ श्रु ॥ २१ ॥ साता दियां साता हुवैरे। इम अन्य तीर्थी कहन्त ॥ सुयगड़ा अंग श्री जिन भाख्यो। ते सुणिज्यो विरतन्त ॥ श्रु ॥ २२ ॥ न्यारो आर्य्य मार्ग थीरे अलघो समाधि थी जाण ॥ धर्म तणीं निन्दा जु करता। जेह बधै इम वाण ॥ श्रु ॥ २३ ॥ अल्प सुखां रै कारणेरे। बहुत नु हारण हार ॥ अमोलख कारण अछैरे। भाख्यो श्री जगतार ॥ श्रु ॥ २४ ॥ लोह वणिक जिम झूरसीरे। तेह प्ररूपणहार ॥ सूत्र देख निरणय करोरे ॥ जिम होवै निस्तार ॥ श्रु ॥ २५ ॥ पांच कुपालें आंतरोरे सरिखो फल नहिं थाय ॥ आम्ब भरोसे वायां धत्तूरो। आम्ब किहां थी खाय ॥ श्रु ॥ २६ ॥ निरारम्भी बिन अवरनैंरे॥ देवे दिवावे ताहि ॥ तेमारग

लोकीकी छेरे। पिण शिव मारग नांहि ।। शु ।।२७।। राय प्रश्नेणी सूत्रमेंरे प्रदेशी राजान ॥ च्यार भाग करि राजरारे । थयो धर्म करण सावधान ॥ शु ॥ २८ ॥ एक भाग राख्यां निमित्तरे ॥ दूजो भाग खजान ॥ तीजो हय गय अर्थ हीवे चौथा भागरो दान ॥ शु ॥ ॥ २६ ॥ इम चिह्नं भाग करी तिणोरे । अन्य भणी वौलाय ॥ संसारिक लफरों इम मेटो ॥ छट्टम २ तप ठाय ॥ शु ॥ ३० ॥ व्रतधारी श्रावक थयोरे धर्म ध्यान चित्त ध्याय ॥ तेता वेला करि कारज सार्या । प्रथम उपाङ्गरे मांय ॥ शु ॥ ३१ ॥ दान सुपात्र दीजियेरे ढेकर मत पोमाय ॥ धुरमार्ग यह शिव तणोंरे॥ भाख्यो श्री जिनराय ।। शु ।। ३२ ।। सुभाऊ प्रमुख पूर्वे भवेंरे सुख विपाकरे मांहि दान देई शुद्ध साधुनेरे । एका-वतारी थया ताहि ।। शु ।।३३।। शिव मग दूजो शील-छेरे । तीजो तप कहिवाय शुभ भावन चोथो कह्योरे । आराध्यां सुख थाय ।। शु ।। ३४ ।। अथवा उत्ताध्ययन मेरे । मोक्ष मार्ग इम च्यार ।। ज्ञान दर्शन चारित्र तप नीका । वलि धुर अंग मंझार ।। शु ।। ॥३५॥ सम्यक् ज्ञान दर्शन थकीरे । तत्व यथा तथ्य जाण ॥ कर्म रुकै चारित्र थीरे । तप सुं कर्म वोदाण ॥ शु ।। ३६ ॥ जिन भाषित यह मार्ग छेरे । अन्य २

मति जान ॥ गुलाब कहै भल भाव सें रे । साध्यां शिव सुख स्थान ॥ श ॥ २७ ॥ इति ॥

॥ अथ असंयम जीवितव्य वर्जनीय ढाल ॥

आज नन्दन वन जोगी आयो । जोगीरो रूप सवायो हे मा ॥ इस चालमे ॥

असंजम जीतव मतकोई वंछो वरज्यो श्रीजिन-रायोरे लो ॥ ए आंकड़ी ॥ जीवणो नाहिं वंछणों । ठाणा अङ्ग दशमां मांह्यो रेलो ॥ फुनसुयगडांग दशम् अध्ययनें । गाथा चोवीसमी ताह्योरे ॥ लो ॥ अ ॥१॥ अण आदर देता मुनि विचरै । श्री सुयगड़ा अङ्ग मांह्यो रेलो ॥ असंयम जीवितव्यनां अरथी । ते बाल अज्ञानी कहायो रेलो ॥ अ ॥ २ ॥ संजम जीतव कह्यो दोहिलो । असंजम जीतव नांह्यो रेलो ॥ वार अनन्त पायो भव भवमे । गरज सरी नहिं कांयो रेलो ॥ अ ॥३॥ संसारिक जीवां नं जीवणों । वंछ्या धर्म न थायो रेलो ॥ रारागी देख्यां राग ऊपजै । द्वेषी सुं द्वेष सवायो रेलो ॥ अ ॥४॥ वंछै संसारिक जीवणो मरणो । ए राग द्वेष कहिवायो रे लो ॥ रागतै दशमूं द्वेष ग्यारमूं । भगवन्त पाप बतायो रेलो ॥ अ ॥ ५ ॥ इन्द्र परीक्षा करण मुनिनौं । ब्राह्मन रूप बनायो रे लो ॥ मिथिला नगरी अग्नि सुं बलती । नमिराय

प्रते दरशायो रे लो ॥ श्र ॥ ६ ॥ मिथिला पुरी जन बलता देखी । तांम नाम ऋषिरायो रे लो ॥ स्हामों न जोयो करुणा न आंणी । उत्तराध्येयन मांह्यो रे लो ॥ श्र ॥ ७ ॥ कह्यो वसूं जीवूं मे सुखसूं । संजम में लवल्यायो रे लो ॥ ए मिथिला जन बलतां म्हारो । किंचित बलै न ताह्यो रे लो ॥ श्र ॥ ८ ॥ सूत्र निशीथ द्वादशम् उद्देशे । पाठ विषै इम बायो रे लो ॥ त्रश जीव देखी अनुकम्पा करि । बांधे बंधावै सरायो रे लो ॥ श्र ॥ ९ ॥ अथवा बंधिया देख जीवां प्रति । करुणा मन मुनि ल्यायो रे लो ॥ छुडावे वलि अनु-मोदे । तो चौमसी चारित्र जायो रे लो ॥ श्र ॥१०॥ चूलनी प्रिया श्रावक मोटो । पोसा मे सुखदायो रे लो ॥ पूत्र तीन मुख आगल मरता । देखि नांहि छुडायो रे लो ॥ श्र ॥ ११ ॥ माता मरती देखि पोसा मे । ऊठ्यो छुड़ावण कांमो रे लो ॥ भांगो पोसो व्रत नेम कह्यो । उपाशक दशामे आंमो रे लो ॥ ॥ १२ ॥ चम्पा नगर तणां व्योपारी । जहाज भरी समुद्रे जावै रे लो ॥ एक देव तब करण परीक्षा । तिण अवशर तिहां आवै रे लो ॥ श्र १३ ॥ अरणक श्रावक बैठो तिणमें । देव कहै समजायो रे लो ॥ सहु मनुष्य सहित ये जहाज डबोऊं । मान हमारी

वायो रे लो ॥ भ ॥ १४ ॥ जो तूं मुख सूं धर्म छोड्यो कहै। तो सहु जीव बच जायो रे लो ॥ इम सांभल अरणक दृढ़ मन करि। धर्म ध्यान चित्त ध्यायो रे लो ॥ भ ॥ १५ ॥ डिगायो डिगयो नहिं श्रावक। करुणा मोह न ल्यायो रे लो ॥ उपशर्ग दूर कियो तव निरजर। सुरेन्द्र तास सरायो रे लो ॥ भ ॥१६॥ प्रिय रूप करि कर जोडी सुर। बोल्यो इह विधि वायो रे लो ॥ प्रिय धर्मी दृढ़ धर्मी तूं सांचो ए सप्तम अंग रै मांयो रे लो ॥ भ ॥ १७ ॥ श्रीजिन मुख सुं सूवे भाख्यो। स्नेह राग दुःख दायो रे लो ॥ कर्म बीज राग द्वेष वेहूं तज। जो शिव सुखनीं चहायो रे लो ॥ भ ॥१८॥ जे संसारिक जीवांनीं करुणा। करै उपकार स्नेह ल्यायो रे लो ॥ ते उपकार संसार तणो छै। जिन धर्म नहीं तिण मांयो रे लो ॥ भ ॥१९॥ जीव जीवै ते दया म जाणों। मरै ते हिन्सा नाह्यौं रे लो ॥ मारण वालो हिन्सक पापी। नहीं मारै ते दया सुखदायो रे लो ॥ भ ॥ २० ॥ यह संसार समुद्र थकी तिर। वंछ तू तिरणों परायो रे लो ॥ गुलाब कहै धन्य ते नर जाणों। जे रागरु द्वेष खपायो रे लो ॥ भ ॥ २१ ॥

॥ अथ दया धर्म वर्णन ढाल ॥

नाथ कैसे गज को फंद छुडायो ॥ तथा ॥ आवत मेरी गलियन में गिरधारी ॥ इस चालमें ॥

करो तुम दया धर्म सुखकारी । यातैं जलदी होय निस्तारी ॥ करो॥ ए आंकडी ॥ पृथिवी अप्प तेऊ वायु बनस्पति । त्रश जीव अधिक अपारी ॥ ए षटकाय हणों मत कोई । जिन आगम अधिकारी ॥ करो ॥ १ ॥ सर्व प्राण भूत जीव सत्व प्रति । नहिं हणवा सुविचारी ॥ दंडे करि ताडवा नहिं त्यानैं । ते न अज्झावियव्वा कह्यारी ॥ करो ॥ २ ॥ न मारे चेतव्वा चाकर तणी परै । किणही कार्य्य मंझारी ॥ न परितापवा पीडा देइनैं ॥ बलि किलामना न करणी त्यांरी ॥ करो ॥ ३ ॥ उपद्रव न देणों किणही जीवनें । इम भाष्यो जगतारी ॥ तीन कालनां जिननौं ये वाणी ॥ द्वितीय सुयगडाङ्ग मझारी ॥ करो ॥ ४ ॥ इमहिज प्रथम अङ्गमें भाख्यो । जोवो नयन उघारी । जीव हिन्सा कियां पाप घणेरो मत हणों एम बिचारी ॥ करो ॥ ५ ॥ गौतम पूछयो पंचम अङ्गे । पृथ्वी हात मझारी ॥ लेतां वेदन कितनी होवै । जिन कहै दृष्टान्त उदारी ॥ करो ॥ ६ ॥ एक पुरष कोई जन्म नो

आंधो। पगहीण खोण काया सारी॥ जन्म नो बहरो जन्म नो गूंगो। तन में रोग अपारी॥ करो॥ ७॥ तरुण पुरुष तसु खडग भाले करि। छेदै भेदै क्रोध धारी॥ बेदना होवै अंध पुरुष नैं। छेद्यां भेद्यां तिण-वारी॥ करो॥ ८॥ तिणथी अधिक कष्ट पृथ्वी नें। लेतां हाल मझारी॥ इम थावर पांचूं प्रति वेदन आगम में अधिकारी॥ करो॥ ९॥ निगोद जमींकंद वनस्पति को। सुनिये हिव विस्तारी॥ अग्र सूई पै आवे तिणमें॥ श्रेण असंख्य कह्यारी॥ करो॥ १० ॥ इक इक श्रेणि में प्रतर असंख्या। प्रतर इक मझारी॥ गोला असंख्य हैं इक इक गोले शरीर जीव अनन्ता। कहतां न आवे पारी॥ इम जाणी हिन्सा नहिं करिये। जिन धर्म मर्म विचारी॥ करो॥ १२॥ घुर आस्रव धुर पापनुं स्थानक। दुरगति दुःख दातारी॥ आरंभ छांडि दया दिल धरिए। जिम पामों भव पारी॥ करो ॥ १३॥ हिन्सा कियां में धर्म न किमपि। आगम मांहि सुनारी॥ एकेन्द्री पंचेन्द्री पोख्यां। धर्म पुन्य नाहिं अनारी॥ करो॥ १४॥ देवल पडिमा करै करावे। पृथ्वी काय विडारी॥ कह्यो अर्हत अबोधनूं कारण। धुर अङ्ग जगतारी॥ करो॥ १५॥ जीव हणिया में दोष न होवैं। हणियां न दोष उचारी

॥ ए आर्य्य अनार्य्य नां वचन कह्या जिन । आचारंग संभारी ॥ करो ॥ १६ ॥ इम जाणी परम धर्म ए करिये अहिंसा सुखकारी ॥ गुलाबचंद कहै धन्य शुद्ध साधु । चरण कमल वलिहारी ॥ करो ॥ १७ ॥

॥ कलश ॥

सुखकार श्रावक धर्म करिये व्रत द्वादश रूपहो । संसार पारावार तरिये, कह्यो श्रीजिन भूप हो ॥ अविरत सेयां अनें सेवायां, अनुमोद्या हुवे पापहो । गुलाब कहै इम शुद्ध श्रद्धो, करो श्रीजिन जाप हो ॥ १ ॥

॥ इति संपूर्णम् ॥

ग्राहकों का हो जाना भी इसकी उत्तमता का सुपुष्ट प्रमाण है अतएव प्रत्येक कविता-प्रेमी के लिये यह अवश्य संग्रह योग्य है। यदि आपको कविता से कुछ भी प्रेम हो, और सैकड़ों कविता-पुस्तकों के बंडल को एक ओर रख कर एक ही पुस्तक से अपनी इच्छा की तृप्ति करना चाहते हों तथा मनोरंजन के साथ २ शिक्षा प्राप्ति की भी कामना हों, तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िये। पृष्ठ संख्या ५६० मूल्य सादी कपड़े की जिल्द ३॥), रेशमी सोनहरी जिल्द ४)

ब्रह्मचर्य्य का अद्वितीय आदर्श—

सुदर्शन-चरित्र।

यह उन्ही स्वनाम धन्य, प्रात स्मरणीय सेठ सुदर्शन का जीवन चरित्र है जिन्होंने मरणान्त दु:ख सहकर भी अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत को भंग नहीं किया। पहले वे कपिला की कसौटी में कसे गये, फिर अभया रानी ने अभय होकर अपनी काम कतरनी से जांचा, इस के बाद उन्होंने (तीन दिन तक अनशन रहकर) वेश्या-हथौड़ी के हाव भाव की चोटें खायीं और अन्त में भूतनी के भभकते हुए उपद्रव-अग्नि कुण्ड में तपाये गये, किन्तु खरे सोने की भांति उनकी प्रभा बढ़ती ही गई। इस पुस्तक को यदि आप आद्योपान्त पढ़ जायंगे तो फिर कभी कामिनी की काम कतरनी के दांवपर न आयंगे। ऐसी बिलक्षण पुस्तक आपने शायद आजतक कभी नहीं पढ़ी होगी। रोचकता के कारण इसके पढ़ने मे उपन्यासका सा आनन्द आता है।

अगर आप व्यभिचार के विषधर कीड़े से देश को बचाना चाहते हैं, वृद्धविवाह का मूलोच्छेद करना चाहते हैं, तो इस आदर्श महापुरुष के जीवन चरित्र का प्रचार कीजिये। जिसको पढ़कर मनुष्य सच्च-रित्र, बलवान तथा एश्वर्य्यवान बनने के साथ २ ब्रह्मचर्य्य के महत्त्व को जान सकता है और संसार के झूठे आनन्द को छोड़; जीवन के सच्चे पवित्र आनन्दामृत का पान कर मानव जीवन को सफल बना

सकता है। यदि स्त्री चरित्र के गूढ़ रहस्यों को जानना चाहते हैं तो इस आदर्श महापुरुष के जीवन चरित्र को अवश्य पढ़िये।

उपयुक्त स्थानों में रंग बिरंगे १२ चित्र दिये गये हैं जिन मे २ तो बहुत ही बढ़िया तीन रंगे हैं और बाकी भिन्न भिन्न रंगों में इक रंगे हैं जिनके अवलोकन मात्र से ही कथा का आशय चित्त पर अङ्कित हो जाता है। चित्रों की सफाई छपाई, अत्यन्त मनोरम होने के कारण पुस्तक की शोभा विचित्र बढ़ गई है। मूल्य १॥) रेसमी सुनहरी जिल्द सहित २॥)

धूर्ताख्यान।

इस में पांच महाधूर्तों के पांच विचित्र आख्यान हैं, जो आश्चर्य और मनोरंजकता में एक दूसरे से बढ़ चढ़ कर हैं। पुस्तक ऐसी विचित्र है कि आनन्द से आश्चर्य की मात्रा बहुत अधिक चढ़ जाती है। आप कैसे ही गंभीर प्रकृति के मनुष्य क्यों न हों इस के किसी २ स्थल को पढकर हांसी को किसी तरह नहीं रोक सकेंगे। आख्यानों का आशय भली प्रकार प्रकट करने के लिये उपयुक्त स्थानों में विविध रङ्गों के ६ हाफटोन चित्र भी दिये गये हैं। यह हिन्दी साहित्य में अपने ढङ्ग की पहली पुस्तक है। मूल्य केवल ॥)

वीरांगना वीरा।

इस पुस्तक में उदयपुर के महाराणा उदयसिंह की उपपत्नी "वीरा" के उस समय के अद्भुत वीरत्व का वर्णन किया गया है जिस समय महाराणा ने सम्राट अकबर को सात बार युद्ध में पराजित किया था। यदि वीर क्षत्रानियों के रण-कौशल और अद्भुत कृत्यों का ऐतिहासिक वर्णन पढ़ना हो तो इस पुस्तक को अवश्य मंगाइये। इसकी पद्य रचना वर्त्तमान लोकरुचि के अनुकूल खड़ी बोली में हरीगीतिका (भारत भारती के तरह के) छन्दों में की गई है। कविता सरस एवं भाव पूर्ण है। प्रत्येक पद से वीर रस चुआ पड़ता है। मूल्य ॥)

साहित्य परिचय ।

इस पुस्तक में साहित्य-काव्य के प्रायः सभी अङ्गों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है जिन के जानने से साधारण से साधारण आदमी भी कविता के मर्म को अच्छी तरह समझ सकता है। यह पुस्तक काव्यप्रेमियों के लिये हृदय का हार, विद्यार्थियों के लिये पाठ्य पुस्तक और सर्व साधारण के लिये साहित्य क्षेत्र तक पहुंचाने वाली शीघ्रगामी मोटर है। मूल्य १)

नित्य नियमावली ।

इस पुस्तक के विषय में अधिक लिखने की कोई आवश्यका नहीं। क्योंकि बहुत थोड़े समय में इसका दूसरा संस्करण ही इसके सर्वोपयोगी होने का प्रमाण है। जहाँ अधिकांश पुस्तकें बिना मूल्य वीतरण होती हो वहाँ मूल्यवाली पुस्तक धड़ा धड़ बिकने लगे तो समझना होगा कि पुस्तक उपयोगी एवं लोक प्रिय है इस में सन्देह नहीं। प्रथमावृति की अपेक्षाय इस प्रस्तुत आवृति में ३२ पृष्ठ अधिक है। कितनी ही उपदेशिक एवं तपस्वियों के गुणों की ढालें इस में संग्रह कर दी गई है। यही इस द्वितीयावृति की प्रथमावृति से विशेषता हैं। इतने पर भी दाम नहीं बढ़ाया गया। नित्य-नियम के लिये यह एक ही पुस्तक प्रयाप्त हैं। श्रावक मात्र के पास इस की एक २ कापी रहनी परमावश्यक है। श्रावक के नित्य स्वाध्याय करने योग्य है। बिना जिल्द वाली पुस्तकें कम बिकने के कारण इसवार सिर्फ जिल्द वाली ही तय्यार कराई गई है। पृष्ठ संख्या २२४ मूल्य रेशमी सुनहरी जिल्द ॥।)

मिलनेका पता--

"ओसवाल प्रेस"—१६, सोनागोग स्ट्रीट, कलकत्ता।